प्रथम संस्करण, १९४७

प्रकाशक—किताब महल, ५६ ए, जीरो रोड, इलाहाबाद
मुद्रक—रामभरोस मालवीय, अभ्युदय प्रेस, इलाहाबाद

भूमिका

तेरह वर्ष हुए, केशवदास पर पहली आलोचनात्मक पुस्तक प्रकाशित हुई थी—'केशव की काव्यकला'। यह दूसरी पुस्तक है। इसमें पिष्टपेषण से बचने का भरसक प्रयत्न किया गया है और सामग्री को नए ढग और नए दृष्टिकोण से उपस्थित किया गया है।

आशा है, यह पुस्तक केशव के अध्ययन को आगे बढ़ाएगी और नए युग के अनुसार उनके मूल्यांकन में सहायक होगी।

रामरतन भटनागर

प्रयाग,
मार्च, १९४७

विषय-सूची

—:०:—

———

१

जीवनी, व्यक्तित्व और रचनाएँ

केशवदास की जीवनी मे गुत्थियाँ बहुत कम है। समसामयिक भक्त कवियो सूरदास और तुलसीदास की भाँति, उन्होने अपने जीवन-वृत्त को अंधकार मे नहीं रखना चाहा, इसलिए 'कवि-प्रिया' मे केशव ने पहले दो प्रभावों मे अपने तथा अपने आश्रय-दाताओ के वंशों का विस्तारपूर्ण वर्णन दिया है।

कवि की कई पीढ़ियाँ ओरछा नरेश के वंश से संबन्धित हैं। केशवदास के पितामह कृष्णदत्त मिश्र ओरछा नगर की नीव डालने वाले ('नगर ओरछो जिन कियो', कविप्रिया) रुद्रप्रताप के यहाँ पुराणवृत्ति पर नियुक्त थे। इनके पुत्र मधुकरशाह अकबर के समकालीन थे। इनके समय में राज्य का विस्तार एवं वैभव बढ़ा। इन्होने आस-पास के नरेशों और सुलतानो से युद्ध करके उनकी बहुत-सी जमीन हथिया ली थी। केशवदास के पिता काशीनाथ मिश्र इन्हीं को पुराण सुनाया करते थे। बाद को उनके देहांत पर केशव के बड़े भाई 'नखशिख' के प्रसिद्ध लेखक बल-भद्र मिश्र को यह पद मिला। मधुकरशाह के बाद ओरछा की गद्दी पर रामशाह बैठे। ये जहाँगीर के समकालीन थे। राजा का सारा काम रामशाह के छोटे भाई इंद्रजीतसिह देखा करते थे। केशवदास इन्हीं इद्रजीत के दरबार मे रहते थे। ये उनके गुरु, पंडित, पुरोहित और पुराण-पाठी रहे होंगे। इन्द्रजीत के यहाँ साहित्य और संगीत का अखाड़ा उसी तरह सजता होगा, जैसा उस समय मुगलो के कृपाभाव पर आश्रित छोटे-छोटे राज्यों में

सजता था। स्वयं इंद्रजीतसिंह ने किसी युद्ध में भाग लिया, य
हम नहीं जानते। कदाचित् नहीं लिया। परन्तु उनके पूर्वजों
रुद्रप्रताप, और उनके भाइयों में रतनसेन, रामसिंह और वीरसि
देव ने अपनी वीरता की अच्छी धाक जमा ली थी। केशव
इंद्रजीत के भाई के नाते ही 'रतनबावनी' और 'वीरसिंह दे
चरित्र' की रचना की, और उनकी वीरता की गाथा गाई। उन
आश्रयदाता इंद्रजीत ने भी यदि कोई युद्ध किया होता, तो
उनपर भी प्रशस्ति-ग्रन्थ लिखे बिना न रहे होते।

केशवदास का ओरछा राजदरबार में बड़ा मान था, इस
कवि ने अनेक बार उल्लेख किया है। इंद्रजीत उन्हें गुरु मान
थे। उन्हीं के नाते राजाराम उन्हें मंत्री मित्र मानते थे। केश
ने अपनी शिक्षा-दीक्षा और आयु का अधिक भाग ओरछ
में ही बिताया। ओरछा नगर और बेतवा नदी एवं आस-पा
की वनस्थली पर उनका बड़ा मोह है। उन्होंने रामचंद्रिका
अप्रासंगिक होने पर भी इनके वर्णन लिखे हैं—

ओरछे तीर तरंगिनि बेतवै
ताहि तरै रिपु केसव को है

उन्होंने उसे गंगा-जमुना ही मान लिया है। ओरछा के सम्बन
में तो वे और भी आगे बढ़ जाते हैं—

वारिए नगर और ओरछा नगर पर

इंद्रजीत के साथ ये तीर्थयात्रा को भी गये, परन्तु अधिकांश जीव
कदाचित् ओरछे में ही बीता। भला जहाँ—

भूतल को इन्द्र इन्द्रजीत राजै जुग जुग
केसौदास जाके राज राज सौ करत है

वहाँ का ऐश्वर्यपूर्ण धाम छोड़ कर केशव कहाँ जाते? उन्हें
वही तीर्थ था। इंद्रजीत का दरबार, अपना घर, छोटे-मो

कवियों का साथ, शास्त्र-विवेचन और पुराण-पाठ, 'राय प्रवीन' का साथ। केशव का जीवन इसी चक्कर से कटा। उनकी दुनिया ओरछे तक ही सीमित थी, उनका ज्ञान शास्त्रों तक, उनका प्रभाव समसामयिक छोटे-मोटे दरबारी कवियों तक, और उनकी प्रेरणा एवं उत्साह का स्रोत 'राय प्रवीन' तक। इन्हीं वेश्याओं के हाव-भाव से उन्हे काव्य के विषय सूझते थे। जरा इन वारांगनाओं के दल में केशव की श्रद्धाबुद्धि तो देखिये। वे राय प्रवीन को—रमा, शारदा, पार्वती तक बना डालते हैं—

रतनाकर लालित सदा, परमानन्दहि लीन
अमल कमल कमनीयकर रमा कि राय प्रवीन

राय प्रवीन कि सारदा सुचि रुचि रंजित अंग
वीना पुस्तक धारिणी, राजहंस सुत संग

वृषभवाहिनी अङ्ग उर, वासुकि लसत प्रवीन
सिव सँग सोहैं सर्वदा, सिवा कि राय प्रवीन

जो हिन्दू कवि वारांगनाओं को पूज्य देवियों के रूप में देख सकता है, उसकी अभिरुचि को किस प्रकार परिमार्जित-रुचि कहा जाय। ग्रन्थों के पढ़ने से जान पड़ता है कि इन्हें काफी सुख था, इंद्रजीत ने २१ गाँव दे रखे थे, अन्य स्थानों से भी कभी कभी अच्छी प्राप्ति हो जाती थी। इसलिए सारा जीवन काव्य-चर्चा और रसिकता में बीतता था। बीरबल से भी इनका अच्छा खासा परिचय था, उनके दरबार में ये बे रोक-टोक आ सकते थे, उनसे कुछ प्राप्ति भी अवश्य होती होगी, क्योंकि उनकी मृत्यु पर इन्होंने लिखा है—

जूझत ही बलबीर बजे बहु दारिद के दरबार दमामे

ओरछा के पास ही अबुल फजल का वध हुआ था, इसमें सलीम का कितना हाथ था, यह इनके काव्य 'वीरसिंह देव चरित्र' से

प्रकाशित है। कदाचित् इसी समय से कुछ मनमुटाव मुग़ल दरबार के साथ अवश्य चला आता था। जहाँगीर ने एक बार ओरछे पर एक बड़ा जुरमाना कर दिया। केशवदास आगरे गये, और वहाँ उन्होंने जहाँगीर के दरबार में रसोई प्राप्त की। कदाचित् बीरबल की सहायता से वे जुरमाना माफ़ कराने में सफल हुए। इसके बाद ओरछे में उनकी प्रशंसा और प्रतिष्ठा भी बढ़ी होगी। कदाचित् यह कुछ दिनों जहाँगीर के दरबार में भी रहे। यहाँ ही रहकर उन्होंने "जहाँगीर जस चंद्रिका" की रचना की, जो साधारण कृति कही जाती है। खोजरिपोर्टों में इसकी प्रतियाँ प्राप्त होने का निर्देश है, यद्यपि यह अभी जनता के सामने नहीं आई है।

इनकी रचनाओं से इनकी प्रवृत्ति का अच्छा प्रकाशन होता है। राजदरबार में धाक-जमाने के लिए जिस ज्ञानबाहुल्य, वागवैदग्ध्य, नैपुण्य, चातुरी, कलाकुशलता की आवश्यकता थी, उनका उपार्जन इन्होंने अवश्य काफी किया था। 'रामचंद्रिका' में ज्ञान-विज्ञान-कला की जो लम्बी-चौड़ी बातें कही गई हैं, वे इसका प्रमाण हैं। परन्तु अधिकतः यह ज्ञान अधूरा था, बहुत गहरा नहीं था। वे संस्कृत पंडितों के वंशज होने के नाते भाषा-लेखन के प्रति क्षोभ प्रगट करते हैं—

> भाषा बोलि न जानहीं, जिनके कुल के दास
>
> भाषाकवि भो मन्दमति, तेहि कुल केशवदास

परन्तु यह स्पष्ट है कि वे संस्कृत के विविध शास्त्रों के इतने बड़े पंडित और आचार्य नहीं थे, जितने अपने समय में प्रतिष्ठित थे, और बाद में प्रसिद्ध हुए। उनका क्षेत्र छोटा था—ओरछा दरबार। वहाँ के पंडितों और कवियों में अवश्य बढ़े ही बढ़े रहे होंगे। परवर्ती कवियों ने उनके वाग्जाल और उत्प्रेक्षा नैपुण्य में पड़कर उन्हें आचार्य और महाकवि मान लिया और प्रसिद्ध किया—

सूर सूर तुलसी ससी उडगन केशवदास

यह प्रसिद्धि अधिकांश राजाश्रय में पनपने वाले कवियों में हुई और बाद को उनके प्रभाव में आकर जनता ने उसे ग्रहण किया। राजाश्रय में जिस प्रकार की कविता बन रही थी, केशव का काव्य उसका सबसे सुन्दर उदाहरण है। अकबर के समय से ही इस काव्य का श्रीगणेश हो गया था। उनके दरबार के कुछ कवियों के नाम हमें प्राप्त हैं—

पाई प्रसिद्धि पुरन्दर ब्रह्म सुधारस अमृत अमृतबानी
गोकुल गोप गोपाल गनेस गुनी गुनसागर गंग सुहानी
जोध जगनीज मे जगदीश जगामग जैत जगत्त है जानी
को अकब्बर सैन कथी इतनै मिलिकै कविता जु बखानी

इसके बाद औरंगजेब के समय तक हिन्दू कवि (हिंदी कवि) मुगल राजाश्रय से संबन्धित रहे। हिन्दू कवियों के राजाश्रय की परम्परा और भी पुरानी है। पौराणिक काल से हिन्दू राजा-महाराजा कवियों को अपने दरबार में सम्मानित करते थे। मुगलों की देखा-देखी यह सम्मान बढ़ा और अनेक कवि प्रत्येक छोटे-मोटे दरबार से संबंधित होने लगे। इस राजाश्रय में पनपते हुए काव्य की कई विशेषताएँ थीं—

(१) कला का आग्रह।

(२) नाद-सौन्दर्य पर विशेष ध्यान—अधिकांश कविताएँ पढ़कर सुनाई जाती थीं। इसीलिए कवित्त, सवैये और दोहे का प्रचार अधिक हुआ।

(३) चमत्कार-प्रदर्शन—इसके लिए पग-पग पर अलंकारों का सहारा ढूँढ़ना आवश्यक था। इसीलिए कवि इस शास्त्र के अध्ययन की ओर विशेष रूप से झुके।

प्रकाशित है। कदाचित् उसी समय से कुछ मनमुटाव मुग़ल दरबार के साथ अवश्य चला आता था। जहाँगीर ने एक बार ओरछे पर एक बड़ा जुरमाना कर दिया। केशवदास आगरे गये, और वहाँ उन्होंने जहाँगीर के दरबार में रसोई प्राप्त की। कदाचित् बीरबल की सहायता से वे जुरमाना माफ़ कराने में सफल हुए। इसके बाद ओरछे में इनकी प्रशंसा और प्रतिष्ठा भी बढ़ी होगी। कदाचित् यह कुछ दिनों जहाँगीर के दरबार मे भी रहे। यहाँ ही रहकर उन्होंने "जहाँगीर जस चंद्रिका" की रचना की, जो साधारण कृति कही जाती है। खोजरिपोर्टों मे इसकी प्रतियाँ प्राप्त होने का निर्देश है, यद्यपि यह अभी जनता के सामने नहीं आई है।

इनकी रचनाओं से इनकी प्रवृत्ति का अच्छा प्रकाशन होता है। राजदरबार में धाक-जमाने के लिए जिस ज्ञानबाहुल्य, वागवैदग्ध्य, नैपुण्य, चातुरी, कलाकुशलता की आवश्यकता थी, उनका उपार्जन इन्होंने अवश्य काफी किया था। 'रामचंद्रिका' मे ज्ञान-विज्ञान-कला की जो लम्बी-चौड़ी बाते कहीं गई हैं, वे इसका प्रमाण है। परन्तु अधिकतः यह ज्ञान अधूरा था, बहुत गहरा नहीं था। वे संस्कृत पंडितो के वंशज होने के नाते भाषा-लेखन के प्रति क्षोभ प्रगट करते हैं—

भाषा बोलि न जानहीं, जिनके कुल के दास
भाषाकवि यों मन्दमति, तेहि कुल केशवदास

परन्तु यह स्पष्ट है कि वे संस्कृत के विविध शास्त्रो के इतने बड़े पंडित और आचार्य नहीं थे, जितने अपने समय मे प्रतिष्ठित थे, और बाद मे प्रसिद्ध हुए। उनका क्षेत्र छोटा था—ओरछा दरबार। वहाँ के पंडितों और कवियों मे अवश्य वह ही वह रहे होंगे। परवर्ती कवियो ने उनके वाग्जाल और उत्प्रेक्षा-नैपुण्य में पड़कर उन्हे आचार्य और महाकवि मान लिया और प्रसिद्ध किया—

सूर सूर तुलसी ससी उडगन केशवदास

यह प्रसिद्धि अधिकांश राजाश्रय में पनपने वाले कवियों में हुई और बाद को उनके प्रभाव में आकर जनता ने उसे ग्रहण किया। राजाश्रय में जिस प्रकार की कविता बन रही थी, केशव का काव्य उसका सबसे सुन्दर उदाहरण है। अकबर के समय से ही इस काव्य का श्रीगणेश हो गया था। उनके दरबार के कुछ कवियों के नाम हमें प्राप्त हैं—

पाई प्रसिद्धि पुरन्दर ब्रह्म सुधारस अमृत अमृतबानी
गोकुल गोप गोपाल गनेस गुनी गुनसागर गंग सुहानी
जोध जगनीज भे जगदीश जगामग जैत जगत्त है जानी
को अकब्बर सैन कथी इतनै मिलिकै कविता जु बखानी

इसके बाद औरंगजेब के समय तक हिन्दू कवि (हिंदी कवि) मुगल राजाश्रय से संबन्धित रहे। हिन्दू कवियों के राजाश्रय की परम्परा और भी पुरानी है। पौराणिक काल से हिन्दू राजा-महाराजा कवियों को अपने दरबार में सम्मानित करते थे। मुगलों की देखा-देखी यह सम्मान बढ़ा और अनेक कवि प्रत्येक छोटे-मोटे दरबार से संबंधित होने लगे। इस राजाश्रय में पनपते हुए काव्य की कई विशेषताएँ थीं—

(१) कला का आग्रह।

(२) नाद-सौन्दर्य पर विशेष ध्यान—अधिकांश कविताएँ पढ़कर सुनाई जाती थीं। इसीलिए कवित्त, सवैये और दोहे का प्रचार अधिक हुआ।

(३) चमत्कार-प्रदर्शन—इसके लिए पग-पग पर अलंकारों का सहारा ढूँढ़ना आवश्यक था। इसीलिए कवि इस शास्त्र के अध्ययन की ओर विशेष रूप से झुके।

(४) प्रेम-चित्रण के स्थान पर विलास-वर्णन की प्रतिष्ठा—इसके लिए नायिकाभेद, कामशास्त्र जैसे विषयों पर कविता करना और शृङ्गार-रस का विस्तृत अध्ययन अपेक्षित हो चला था।

(५) ऐश्वर्य-वर्णन—राजाओं और महाराजाओं के आश्रित कवियों की विशेष प्रवृत्ति इसी ओर होनी चाहिए थी। इसी प्रवृत्ति के कारण केशव ने राजाराम को रामचंद्रिका का नायक बनाया।

(६) प्रशस्ति काव्य—प्राचीन काल से राजाश्रय से सम्बन्धित कवि इस प्रकार के काव्य रच रहे थे। संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं मे अनेक "प्रशस्ति काव्य", "वीरकाव्य" आदि रचे गये थे। मध्ययुग मे तो इनकी बाढ़-सी आ गई। वीरता का कोई काम आश्रयदाता ने किया हो, या न किया हो, प्रत्येक कवि अपने आश्रयदाता को दूसरे कवि के आश्रयदाता से ऊँचा बनाने का प्रयत्न करता।

ऊपर जितनी विशेषताएँ कही गई है उनमे कवि की उत्कृष्ट कल्पनाशक्ति का अनुरोध प्रगट है। अतः उत्प्रेक्षाओं का इस काल मे इतना बाहुल्य रहा है कि कोई भी दूसरा काल उसकी होड़ नहीं कर सकता। तात्पर्य यह, कि राजाश्रय की मूल प्रकृति के कारण काव्य का पतन हो गया था, और उसमे विचित्रता के आयोजन की प्रधानता थी।

इस राजाश्रय की कविता मे ही पहली बार नायक के रूप मे कृष्ण को स्वीकार किया गया—शृङ्गार काव्य के नायक के रूप मे। भक्तिकाव्य के नायक श्रीकृष्ण थे ही, परन्तु मधुरभक्ति का सारा ढाँचा शृङ्गारशास्त्र पर खड़ा है, अतः मधुरभक्ति के नायक को शृङ्गार के नायक होने मे कोई देर नहीं हुई। सूरदास की कविता मे शृङ्गार की प्रेरणा स्पष्ट है और उनके समकालीन

गदाधर भट्ट, हित हरिवंश और हरिदास की कविताओं मे राधा-कृष्ण के केलि-विलास को कामशास्त्र और शृङ्गारशास्त्र के सहारे ही खड़ा किया गया है। नंददास 'रसमंजरी' मे "सब रस कृष्ण में ही तो परिणिति पाते है"—"सारा सौन्दर्य, आनन्द और प्रेम कृष्ण का ही तो है"—इस विचारधारा को जन्म दिया। इसी तर्क को उपस्थित करते हुए उन्होंने संकोचरहित हो नायिकाभेद की रचना की और कृष्णानुरक्ति को भाव, हेला, रति के नाम से उपस्थित किया। हिततरंगिणी मे हम पहली बार रस-निरूपण के लिए राधाकृष्ण के प्रेम-विलास का प्रयोग पाते हैं। सूरदास की साहित्य लहरी (१६०७ सं०) मे अलंकार और नायिकाभेद को लेकर राधाकृष्ण के पद लिखने की चेष्टा की गई है। ऐसी ही चेष्टा अधिक पूर्णरूप मे कविप्रिया और रसिकप्रिया में मिलती है। इस प्रकार रीतिकाव्य मे कृष्ण का नायकत्व पहली बार लक्षणों के उदाहरणों मे प्रगट हुआ। इसके बाद जब फुटकर असंबन्धित कवित्त-सवैये इन लक्षण ग्रन्थो के उदाहरणों की प्रेरणा से बनने लगे, तो सारे काव्य में ही राधाकृष्ण नायक-नायिकारूप में व्याप्त हो गये। जब हम देखते हैं कि राजाश्रय में संगीत और काव्य दोनो का प्रवाह बह रहा था, संगीत के लिए राधाकृष्ण के शृङ्गारपद ही प्रचलित थे, और अधिकांश अच्छे गायक रसशास्त्र-विज्ञ और कवि भी थे, तब यह अनुमान दृढ़ हो जाता है कि दरबारो मे ही कृष्ण को रीतिकाव्य के नायक के रूप में प्रतिष्ठित किया गया। जिन कवित्त-सवैयों का दौर-दौरा हुआ, उनकी थोड़ी बहुत रचना भक्तिकाव्य में भी हो चुकी थी। सूरदास और नंददास प्रभृति कृष्णभक्त कवियो के भी हमे कवित्त-सवैये मिलते हैं, यद्यपि अभी उनकी कला पुष्ट नहीं हो पाई है। ये कवित्त-सवैये श्रव्यकाव्य के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध हुए और इन्हीं मे अधिकांश रीतिकाव्य प्रकाशित हुआ। इन कवित्त-सवैयो

के लेखकों को भाषा, शैली, विषय, भाव किसी की ओर विशेष मौलिक प्रयत्न नहीं करना पड़ा। वे पग-पग पर भक्तकवियों से उधार लेना नहीं भूले। इसी से यह कवित्त-सवैया-साहित्य बड़ी शीघ्रता से पुष्ट हो गया।

इस समय भी भक्तिकाव्य विशेषरूप से प्रबल था, अतः ये शृङ्गारिक कवि भी कृष्ण के देवत्व-भाव को एकदम नहीं भूल गये। कुछ विषय के अनुरोध से, कुछ समसामयिक धार्मिक वातावरण के कारण, इन शृङ्गार, कवित्त, सवैयों में स्थान-स्थान पर भक्ति चमक उठती है। कहा भी है—

आगे के कवि रीझिहैं तो कविताई
न तो राधामाधव सुमिरन को वहानो है

इस प्रकार कवि स्पष्ट रूप से शृंगारपरक कवित्त, सवैया लिखता हुआ, उसे जनता के सामने "राधामाधव के सुमिरन" के रूप में रख रहा है। साधारण जनता में ये कवि क्यों प्रिय हैं, इसका कारण है। हमने अन्यत्र वतलाया है कि उस समय नारीजीवन में अनाचार की मात्रा उतनी नहीं थी, जितनी हम अब कल्पित करते हैं। इस समय वैष्णवभक्ति का विशेष प्रचार था और जनता में राधा-कृष्ण भक्ति विशेष रूप से प्रतिष्ठित हो गई थी। इस जनता ने रीतिकाव्य को उसी प्रकार धर्म की भूमि पर ग्रहण किया जिस प्रकार उसने सूरदास के शृङ्गारिक पदों को धार्मिक मान लिया था। देव-मन्दिरों में अवश्य उनका काव्य अर्चनापुष्प न वन सका। उसमें धार्मिक प्रेरणा स्पष्ट रूप से कम थी। इसे छिपाया नहीं जा सकता था।

केशवदास के काव्य से स्पष्ट हो जाता है कि वे राधामाधव के भक्त नहीं हैं, अलबत्ता वे उनके अलौकिक रूप से परिचित हैं। परन्तु उन्होंने उन्हें शृङ्गारकाव्य के नायक-नायिका के रूप में ही

देखा है। यही नहीं, सभी रसों की उन्होंने कृष्ण में स्थापना कर दी है (दे० रसिकप्रिया)। उनकी रामचंद्रिका मे भक्तिभाव अवश्य है। वहाँ उन्होंने अत्यंत संयम से शृंगार को बहुत कुछ बहिष्कृत रखा है। इससे स्पष्ट है कि उनकी भक्ति राम में ही थी। लाला भगवानदीन ने सूचना दी है कि ओरछे में एक हनुमान-मन्दिर है जिसके स्थापक केशवदास कहे जाते है। तात्पर्य यह है कि कवि रामभक्त अवश्य था और उसने हनुमानाश्रय ग्रहण किया था। इस एक सूचना के अतिरिक्त कवि के धर्मभाव के सम्बन्ध में कम-से-कम जहाँ तक इस धर्म का उसके लौकिक जीवन से संबंध था, कुछ भी उल्लेख नहीं पाते। कवि के अंतिम ग्रन्थ विज्ञानगीता में हम उसे निर्गुण भक्ति के प्रतिपादक कवि के रूप मे देखते है। बुन्देलखंड संतसंप्रदाय (कबीरपंथ) का केन्द्र रहा है। अतः संभव है आयु के अन्त मे पश्चात्ताप के रूप मे कवि संतकाव्य की ओर मुड़ा हो और उसने इस रचना द्वारा क्षीण होती हुई निर्गुण भक्ति-धारा के प्रति अपनी सहानुभूति प्रगट की हो।

केशव के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में हमे विशेष कुछ नहीं लिखना है। उनका चित्र प्राप्त है। उससे उनकी बहुत कुछ वैयक्तिक विशेषताओ का पता लगता है। राजाश्रय मे रहनेवाले अधिकाश कवियों की भक्ति ऐसी ही थी, भक्त न होते हुए वे भक्त बनते थे, पंडित न होते हुए उन्हे पंडित बनना पड़ता था। उनमें से अधिकाश मे रसिकता की मात्रा तो विशेष थी, परन्तु कवि-सुलभ सहृदयता की मात्रा अधिक नहीं थी। उन्होंने मस्तिष्क को नवीन-नवीन भावों के लिए अधिक उकसाया, हृदय पर उनका अधिक भरोसा नहीं था। वे शास्त्रानुशीलन मे रत रहते थे, या ऐसा बहाना करते थे। लोक-व्यवहार और लोकजीवन के प्रति उनकी दृष्टि विशेष थी। वे भावुक कवि उतने न थे, जितने व्यवहार-चतुर

पंडित। उनका काव्य उनके इस व्यवहार कुशल साहित्य के प्रकाशन का एक अंग है।

केशव की रचनाओं के सम्बन्ध में अभी विशद खोज नहीं हुई है। संभव है, विशेष खोज होने पर उनकी कुछ अन्य रचनाओं का भी पता चले। केशव के ७ ग्रंथ प्रसिद्ध हैं—विज्ञान-गीता, रतनबावनी, जहांगीरजसचंद्रिका, वीरसिंहदेव चरित्र, रसिक-प्रिया, कविप्रिया और रामचंद्रिका। इन ग्रंथों में रामचंद्रिका, कविप्रिया और रसिकप्रिया बहुत प्रसिद्ध है। लाला भगवानदीन ने ४ अन्य ग्रंथों का उल्लेख किया है :

१—छंदशास्त्र का कोई एक ग्रंथ

२—रामालंकृतमंजरी—कोई कोई इसी को छंदों का ग्रंथ कहते है।

३—नखशिख (नायिकाभेद)

४—स्फुट (कुछ कवित्त, सवैये और दोहे)

इनमे नायिकाभेद भारतजीवन प्रेस, काशी, मे प्रकाशित हो चुका है। लालाजी के अनुसार यह साधारण रचना है। कुछ विद्वानो का विचार है कि ऊपर लिखे १, २ ग्रन्थ एक ही है। दोनो अप्राप्य हैं। हॉ, रामचंद्रिका की कुछ प्राचीन पोथियों मे कुछ छंदो के लक्षण भी नीचे लिखे गये है और इनमे रामालंकृतमञ्जरी का हवाला है। रामचंद्रिका मे कवि ने केवल छंदो का पग पग पर परिवर्तन किया है। यह स्पष्ट है कि कम से कम कुछ अंशो मे यह ग्रन्थ पिंगल का उदाहरण मात्र है, या इसके छंद किसी पिंगल-ग्रन्थ के लिए ही रचे गये थे, और बाद मे रामचंद्रिका मे इकट्ठे कर दिये गये। रामचंद्रिका में कविप्रिया और रसिकप्रिया की सामग्री को भी पूर्णतः अपनाया गया है, अतः यह संभव है। इससे यह आवश्यक है कि रामालंकृतञ्जमरी की खोज की

जाय, या रामचंद्रिका के छंदों को लेकर उसका पुनर्निर्माण किया जाय।

केशव कवि के नाम से दो ग्रन्थ और मिलते हैं। उन ग्रन्थों के नाम है—बालिचरित्र और हनुमान-जन्म-लीला। इनकी रचना शिथिल है। हनुमान-जन्म-लीला पर नोट देते हुए सर्चरिपोर्ट १९०९, १९१०, १९११ के लेखक लिखते है—

"Keshava Das, the writer of Hanuman Janma Lila is an unknown poet He was certainly not the famous poet of Orchha . . ."

लाला भगवानदीन ने केशव के सम्बन्ध मे विस्तृत चर्चा की थी, उन्हीं की टीकाएँ लेकर आज केशव के अध्ययन-अध्यापन और समालोचन का काम होता है। उनका कहना है कि ओरछा मे एक हनुमानजी का मन्दिर है। जनश्रुति है कि इसे कवि केशवदास ने ही संस्थापित किया था। अतः संभव है कि उपरोक्त रचना कवि की ही हो, और उसमें विशेष काव्य-कौशल प्रस्फुट न हुआ हो। जो हो, इन ग्रन्थो के सम्बन्ध में अभी हम संदिग्ध ही है। आवश्यकता इस बात की है कि केशव सम्बन्धी सारी सामग्री सुसंपादित और प्रामाणिक रूप से हमारे सामने उपस्थित हो जिससे उसकी समीक्षा का काम निश्चयात्मक रूप से किया जा सके। अभी तक प्रस्तुत सामग्री की दशा किसी प्रकार आशाजनक नहीं है।

रामचंद्रिका प्रसिद्ध महाकाव्य है जिसका सम्बन्ध महाराज रामचंद्र की कथा से है। इसकी रचना-तिथि संवत् १६५८ है। इस प्रकार यह रचना रामचरितमानस की रचना के २७ वर्ष बाद प्रकाश मे आई। कविप्रिया की रचना भी इसी वर्ष (१६५८) हुई। इसमे अलंकारो का विशद विवेचन है। केशव ने वर्णन को भी "अलंकार" माना है और जिन वर्णनों से राम-

चंद्रिका भरी पड़ी है वे वर्णन कदाचित् पहली बार इसी ग्रंथ के लिए तैयार किये गये हों और बाद को रामचन्द्रिका में भी उपयुक्त स्थान पर रख दिये गये हों। रसिकप्रिया की रचना सं० १६४२ में (रामचन्द्रिका की रचना के १० वर्ष पहले) हो चुकी थी। इसमें शृङ्गाररसशास्त्र और नायिकाभेद को विषय बनाया गया है। इसके भी अनेक छंद रामचन्द्रिका में ग्रहीत हैं। 'विज्ञानगीता' केशव के अंतिम दिनों की कृति है। कवि ने कथा-प्रसंग बाँध कर रूपक-द्वारा मानसिक भावों का विवेचन किया है। कदाचित् उन्होंने यह ढङ्ग संस्कृत ग्रंथ "प्रबोध चन्द्रोदय" से लिया है। कौन धर्मभाव किसका सहायक है और कौन किसका विरोधी है, अच्छा कौन है, बुरा कौन, यही नाटकीय ढङ्ग से दिखलाया गया है। बौद्धों और सखी-उपासनावालों को कलिकाल का सहायक माना है। बौद्धों का तो उन दिनों कहीं अस्तित्व भी न था, अतः उनका विरोध तो महत्वपूर्ण नहीं, परन्तु रामोपासक होने के कारण सखीभाव के उपासकों पर उनकी दृष्टि गई और उन्होंने उनका विरोध किया। यह महत्वपूर्ण बात है कि तुलसी के समय में ही सखीभाव के उपासकों की प्रधानता हो गई थी।

केशव के तीन ग्रंथ रतनबावनी, वीरसिंहदेव चरित्र और जहांगीरजसचन्द्रिका चरित्रकाव्य या वीरकाव्य के अंतर्गत आते हैं।

२

रामचन्द्रिका

(१) रामकथा

केशव ने रामकथा को मौलिक ढंग से आरम्भ किया है। साधारण रूप से रामकथा के आरम्भ में भूमिका-रूप राक्षसों के अत्याचार, देवताओं के साथ पृथ्वी की स्तुति और विष्णु या ब्रह्म की आकाशवाणी का वर्णन एवं उल्लेख होता है। केशव ने इन सब प्रसंगों को अपनी रचना में स्थान नहीं दिया है। यद्यपि वे इनका उल्लेख आगे चलकर अगस्त्य के मुँह से करा लेते हैं—

ब्रह्मादिदेव जब विनय कीन
तट क्षीर सिन्धु के परम दीन
तुम कह्यो देव अवतरहु जाय
सुत ह्वै दसरथ को होव आय

—(प्रकाश ११, छं० १२)

उन्होंने अपनी कथा को राम-जन्म से भी आरम्भ नहीं किया है। वे राम की वाल-लीला भी नहीं दिखाते। कथारम्भ विश्वामित्रके आगमन से होता है। राम-द्वारा यज्ञ-रक्षण के वाद एक ब्राह्मण पथिक जनकपुर से आता है। वह सीता स्वयम्बर की कथा वर्णन करता है (प्रकाश ३-५)। इस वर्णन के अन्तर्गत ही रावण-बाण-सम्वाद है। अन्त में ब्राह्मण कहता है—जब धनुष नहीं टूटा

तो सबको सन्देह होने लगा कि सीता का ब्याह होगा भी या नहीं। उसी समय एक चमत्कार हुआ—

> सिय सङ्ग लिये ऋषि की तिय आई
> इक राजकुमार महा सुखदाई
> सुन्दर वपु अति स्यामल सोहै
> देखत सुर नर को मन मोहै
> लिखि लाई सिया को वरु ऐसो
> राजकुमारहिं देखिय जैसो

(एक ऋषि-पत्नी आई जिसके हाथ मे एक चित्र के साथ एक राजकुमार का चित्र था······यह राजकुमार ऐसा ही दिखलाई देता है जैसा राजकुमार उस चित्र मे था।) यह ऋषि-पत्नी का अवतरण केशव की अपनी कल्पना है। ब्राह्मण के वर्णन द्वारा हनुमन्नाटक और प्रसन्नराघव के रावण-वाण-सम्वाद भी ले लिये गये और मिथिला चलने की भूमिका भी वन गई। ब्राह्मण की वात सुन कर विश्वामित्र मिथिला चल देते है। मार्ग मे अहल्या की कथा आती है परन्तु वह अत्यन्त संक्षेप मे है और उसमें मौलिकता यह रक्खी गई है कि रामचन्द्र की दृष्टि पड़ते ही शिला सुन्दर रूपवाली स्त्री हो गई—

> वन राम शिला दरसी जवहीं। तिय सुन्दर रूप भई तवही
>
> पूछली विश्वामित्र सों रामचन्द्र अकुलाइ
> पाहन ते तिय क्यों भई कहिये मोहिं समुझाइ
> गौतम की यह नारि इन्द्र दोष दुर्गति भई
> देखि तुम्हे नरकारि परम पतित पावन भई
>
> तेहि अति रूरे रघुपति देखे। सव गुण पूरे तन मन लेखे
> यह वरु माँग्यो दया न काहू। तुम यों मन ते कतहुँ न जाहू
>
> (पाँचवाँ प्रकाश ३, ४, ५, ६)

शतानन्द को लेकर जनक आते है और परस्पर, शिष्टाचार के बाद जनक के पूछने पर विश्वामित्र युवराजों का परिचय देते हैं। विश्वामित्र कहते है कि राम धनुप देखना चाहते है। जनक कहते है –

ऋषि है वह मन्दिर माँझ मँगाऊँ
गहि ल्यावहि हौ जन यूथ बुलाऊँ

इस पर विश्वामित्र कहते है कि सब लोग क्या करेंगे, यह राजकुमार (राम) ही जाकर ले आवेगे। जनक शंका करते है, परन्तु विश्वामित्र आज्ञा दे देते है—

सुनि रामचन्द कुमार। धनु आनिये इक बार
पुनि वेगि ताहि चढाउ। जस लोक लोक बढाउ

रामचन्द्र लीला मे ही धनुष को सन्धान लेते है। धनुप टूट जाता है। जनक शतानन्द से कहते है—तुम तो साथ थे, तुमने तोड़ने क्यो दिया। शतानन्द ने कहा – मै तो कुछ कर ही नही पाया। फिर सीता ने जयमाल राम के गले मे पहना दी।

इस प्रसंग मे मौलिकता है। वाल्मीकि मे योद्धा लोग उस महान शकट को खींच कर लाते है जिसमे धनुष रक्खा है, यहाँ स्वयं राम उसको जाकर तोड़ देते है।

छठवे प्रकाश मे राम-विवाह है वाल्मीकि में राम-विवाह प्रसग एक ही छंद मे समाप्त कर दिया गया है। तुलसी के रामचरित मानस मे विवाह वर्णन सविस्तार है। रामचन्द्रिका मे भी हम राम-विवाह का विस्तृत वर्णन पाते है। यद्यपि केशव ने इसे दूसरे ही प्रकार लिखा है। मानस और रामचंद्रिका के विवाह वर्णनो की तुलना करने पर यह बात स्पष्ट रूप से समझ में आ सकती है।

बरात के अयोध्या लौटते समय मार्ग मे परशुराम मिलते हैं (सातवाँ प्रकाश)। इस क्रम से वाल्मीकि का पालन किया गया है।

मानस मे यह भेट स्वयम्बर सभा में होती है। परन्तु जहाँ वाल्मीकि में इस प्रसंग मे केवल राम और तुलसी मे रामलक्ष्मण भाग लेते है, वहाँ यहाँ चारो भाई भाग लेते हैं, विशेषकर भरत और लक्ष्मण। इसके अतिरिक्त यहाँ जब दोनों राम क्रोध करते है तो महादेव आकर उपस्थित हो जाते है और उन्हें शान्त करते हैं। परशुराम तब भी रामावतार में सदेह करते है और अपने नारायणी धनुष से परीक्षा करते है। शेष उसी तरह है जैसा अन्य स्थानो पर है।

इस प्रकार हम देखते है कि बालकांड की कथा चार प्रकाशो में कही गई है (३-७)। इस कथा मे कई मौलिकताएँ है जैसा हम ऊपर दिखा चुके है। केशव ने कथा को वाल्मीकि के आधार पर ही खड़ा किया है—परन्तु उसमे कुछ मानस के आधार पर कुछ अपनी मौलिकता के बल पर अन्तर रक्खा है। आठवॉ प्रकाश रामकथा-विकास की दृष्टि से महत्त्वहीन है, क्योंकि उसमे केवल अयोध्या और बरात के स्वागत का वर्णन है।

अयोध्याकांड की कथा केवल दो प्रकाशों (९-१०) मे कह दी गई है। सच तो यह है कि रामकथा के इस अत्यन्त नाटकीय, मनोवैज्ञानिक और सरस अंश के साथ केशवदास ने इतना अत्याचार किया है कि उनकी प्रतिभा पर ही संदेह होने लगता है। किसी भी रामकथा में—प्रसन्नराघव जैसे नाटको को छोड़कर जहाँ वस्तु-संघटन हो दूसरी प्रकार का है—वनवास-कथा को इतने संक्षेप मे नहीं कहा गया है—

> दसरत्थ महा मन मोद रये। तिन बोलि वशिष्ठ सो मंत्र लये
> दिन एक कहो सुभ सोभ रयो। हम चाहत रामहि राज दयो
> यह बात भरत्थ की मातु सुनी। पठऊँ बन रामहि बुद्धि गुनी
> तेहि मन्दिर यो नृप सों विनयो। वर देहु हुतो हमको जु दयो

नृप बात कही हँसि हेरि हियो। वर माँगि सुलोचनि मैं जु दियो
नृप तासु विसेस भरत्थ लहैं। बरषै, वन चौदह राम रहैं

यह बात लगी उर वज्र तूल
हिम फाट्यौ ज्यौं जीरन दुकूल
उठि चले विपिन कहँ सुनत राम
तजि तात मातु तिय बन्धु धाम

राम कौशल्या के घर जाते है। फिर लक्ष्मण को साथ ले सीता के पास आते है। सीता-राम-सम्वाद मे तुलसी का रंग है। फिर राम लक्ष्मण से रह जाने को कहते है। अंत मे तीनो वन चल देते है। सुमन्त के साथ जाने की बात तो है ही नहीं। यहाँ तो—

रामचन्द्र धाम ते चले सुने जबै कृपाल
बात को कहै सुनै सुछै गये यहाँ विहाल
ब्रह्मरन्ध्र फोरि जीव यों मिल्यो जु लोक जाय
गेह तूरि ज्यों चकोर चन्द्र मे मिलै उड़ाय

वाल्मीकि मे वन-पथ का वर्णन नहीं है। तुलसी मे यह वर्णन सुविस्तृत है। वन-पथ की झाँकी तुलसी की अपनी सूझ है और केशव उसी से प्रभावित जान पड़ते है। भरत के ननिहाल से लौटने, माता से मिलने, उसे धिक्कारने, कौशल्या के पास जाकर शपथ खाने आदि प्रसंग अत्यन्त संक्षेप मे है। और वे रामचरित मानस से पूरा मेल खाते है। केशव विना किसी संदर्भ के कथा आगे बढ़ाते हैं। भरत के ससैन्य चित्रकूट पहुँचने की कथा देखिए। कितने संक्षेप मे है—

पहिरे बकल सुजटा धरिकै। निज पायन पंथ चले अरि कै
तरि गङ्ग गये गुह सङ्ग लिये। चित्रकूट विलोकत छाँड़ि दिये
(दसवाँ प्रकाश, छन्द १३)

भरत के आगमन पर लक्ष्मण का क्रोधादि मानस के समान ही

है, परन्तु केशव के इस प्रसंग में लक्ष्मण रसोद्रेक की दृष्टि न रखते हुए व्यर्थ की उत्प्रेक्षाएँ करते जाते हैं—

रण राजकुमार अरुझहिगे जू। अरि सन्मुख धायन जूझहिगे जू
जनु ठौरनि ठौरनि भूमि नवीने। तिनके चढ़िवे कहँ मारग कीने
रहि धूरि विमाननि व्योम थली। तिनको जनु टारन भूमि चली
परिपूरि अकासहि धूरि रही। सुगयो मिटि सूर प्रकास मही
ऊँचे कुल को करहि ज्यों देखहि रवि भगवन्त
यहै जान अन्तर कियो मानो यही अनन्त
बहु तामहँ दीह पताक लसै। जनु धूम मे अग्नि की ज्वाल बसै
रसना किधौ काल कराल घनी। किधौ मीच नचै चहुँ ओर बनी

भूमि ने यह समझकर कि यहाँ क्षत्रीगण भिड़कर युद्ध करेंगे, और वीरता-पूर्वक रण मे सम्मुख मार करते हुए प्राण त्यागेंगे, स्थान-स्थान पर स्वर्गारोहण के लिए सड़कें बनादी है। अपने वंशधरों का पारस्परिक कलह सूर्य भगवान् न देख सकेंगे, यह सोच कर सूर्य के मुख पर पृथ्वी ने धूल का परदा डाल दिया है। उस उड़ती धूल में अनेक पताकाएँ फहराती है। वे ऐसी जान पड़ती है मानो धूम में अग्नि की ज्वालाएँ हैं। अथवा करालकाल की अनेक जिह्वाएँ है, या अनेक रूप धारण किये हुए मृत्यु ही जहाँ-तहाँ घूम रही है।

भरत सेना को छोड़कर माताओं आदि के साथ आते हैं। शिष्टाचार के बाद राम से लौटने की प्रार्थना करते है। अंत में उन्होंने मंदाकिनी गंगा के तीर जाकर शरीर-त्याग इत्यादि का संकल्प किया। गंगा स्त्री का रूप धर कर भरत को प्रबोध करती है। अंत मे अदृश्य हो जाती है। भरत राम से पादुका माँग कर लौट आते है। नन्दिग्राम मे रहने लगते है। गंगावतरण की बात एकदम केशव की कल्पना है। इस प्रकार वे अत्यन्त सुन्दर स्थलों को बचा गये।

प्रकाश ११-१२ पद में अरण्य की कथा है। अत्रि-अनुसूया मिलन संक्षेप में है। सीता को उपदेश का उल्लेख मात्र है। इसके अनंतर विराध-वध है। अगस्त्य से राम पर्णकुटी के लिए स्थान पूछते हैं। वे चित्रकूट बताते हैं। राम के शरीर की सहज सुगन्ध से आकर्षित हो शूर्पनखा आती है। शूर्पनखा-प्रसंग मानस से मिलता-जुलता है। केशव राम द्वारा खरदूषण-त्रिशरा का वध केवल तीन छन्दों में देते हैं। शूर्पनखा रावण के पास जाकर यह समाचार देती है और सीता के सौन्दर्य का वर्णन करती है। रावण-मारीच-प्रसंग मानस जैसा ही है। यहाँ राम सीता का अग्निप्रवेश कराते हैं—अब तक हम इस विषय में तुलसी को ही मौलिक समझते थे। सीता-लक्ष्मण-सम्वाद और सोने के मृग की कथा अत्यन्त संक्षेप में है। सारा प्रसंग मानस के समान है। रावण द्वारा सीता हरण के सम्बन्ध में केवल एक छंद है—

छिद्र ताकि छिद्र बुद्धि लङ्कनाथ आइयो
भिक्षु जान जानकी सु भीख को बुलाइयो
सोच पोच मोच के सकोच मीन मेष को
अंतरिच्छ ही हरी ज्यों राहु चन्द्र रेख को

जटायु रावण से युद्ध करता है। आगे सीता ऋष्यमूक पर पांच वानरों को बैठा देख नूपुर-पट गिरा देती है। केशवदास मारीच-वध के बाद लौटे हुए राम का विलाप नहीं देते। इसके अनन्तर जटायु और कवन्ध से भेंट है और राम की उन्मत्त दशा का परम्परागत वर्णन है परन्तु बदले रूप में।

४—किष्किन्धाकांड के हनुमान-भेंट की कथा मानस की भाँति ही है। परिवर्तन यह है कि यहाँ हनुमान विप्र भेष छोड़ कर सुग्रीव के पास लौट जाते हैं। और उन्हें साथ लाकर राम के चरणों पर डालते हैं। सप्तताल भेद की परीक्षा का भी वर्णन है। बालिवध की कथा इस प्रकार है—

रवि पुत्र वालि सो ।होत युद्ध । रघुनाथ भये मन माँह क्रुद्ध
सर एक हन्यो उर मित्र काम । तब भूमि गिर्यो कहि राम राम
कछु चेत भये ते वलनिधान । रघुनाथ विलोके हाथ वान
सुभ चीर जटा सिर स्याम गात । वन माल हिये उर विप्र लात

वालि—

जग आदि मध्य अवसान एक । जग मोहत हौ वपु धरि अनेक
तुम सदा शुद्ध सवको समान । केहि हेतु हन्यो करुणानिधान

राम—

सुनि वासव सुत वल बुधि निधान । मै शरणागत हित हने प्रान
यह साँटों ले कृष्णावतार । तब है हौ तुम संसार पार

यह "कृष्णावतार" की मौलिक सूझ है। केशव स्पष्टतया तुलसी के बालि द्वारा राम के प्रति आक्षेप को सामने रख कर लिख रहे हैं।

राम-लक्ष्मण प्रवर्षण पर रहने लगते हैं। शरद बीतने पर राम क्रोधित हो लक्ष्मण को सुग्रीव के पास भेजते है। तारा प्रबोध करती है। हनुमान भिन्न-भिन्न दिशाओं मे वानरों को भेजते है वे समुद्र पर पहुँच कर हताश हो जाते है। वानरों के परस्पर आक्षेप मौलिक हैं। सम्पाति की कथा का केवल इंगित है। हनुमान समुद्र लाँघते है।

सुन्दरकांड की कथा तेहरवे-चौदहवे प्रकाश मे है। सारी कथा मानस जैसी है परन्तु संक्षेप मे है। सुरसा और सिंधिका का केवल उल्लेख ही मिलता है—

वीच गये सुरसा मिली और सिंधिका नारि
लील्य लियो हनुमन्त तेहि कढ़े उदर कहँ फारि

लंका राक्षसी को मारने का भी कथन है। लंका भविष्य की बात कहती है, यह मौलिकता है। रावण के अन्तःपुर का वर्णन

वाल्मीकि के समान है। हनुमान स्वयं शीशम के पेड़ के
नीचे सीता को देख लेते है। रावण-सीता-वार्तालाप मौलिक
है। इसी प्रकार सीता-हनुमान-संम्वाद और हनुमान-रावण-
सम्वाद। इन सम्वादों पर हनुमन्नाटक की छाया है, परन्तु
कहीं कहीं मानस का प्रभाव भी लक्षित है। जैसे यहाँ भी सीता
अशोक से आग माँगती है और हनुमान अँगूठी गिरा देते हैं,
और वे अग्निकण समझ कर उसे उठा लेती है। मानस की तरह
यहाँ भी अग्निकांड के बाद केवल मात्र विभीषण का घर
बचा रहता है। हनुमान सीता के पास लौटते है, उनके पैर पड़ते
है, विदा होते है, सोचते है, खेद है परपुरुष होकर सीता का शरीर
नहीं छू सकता। रावण-गोष्ठी और विभीषण-त्याग की कथा
मौलिक है। समुद्र-बंध की कथा केवल एक चौपाई मे है—

जब ही रघुनायक बाण लियो। सविशेष विशोषित सिन्धु दियो
तब ही द्विजरूप सु आइ भयो। नल सेतु रचै यह मन्त्र दियो

केशव की रामकथा के अध्ययन से हम कितने ही निष्कर्ष
निकाल सकते है—(१) रामकथा मे केशव की रुचि नहीं है।
वह अत्यन्त क्षिप्रता से संक्षेप मे लिखी गई है। (२) उनकी कथा
मूलत वाल्मीकि रामायण पर आश्रित है परन्तु तुलसी की व
वस्तु मे भी सहारा लिया गया है। और स्वयं भी मौलिक व
का प्रयत्न किया गया है। (३) विभिन्न छन्दों मे लिखने के कार
कथा भली भाँति संगठित नहीं हो सकी है। वह नाटकीय ह
गई है और इसी से सौंदर्यहीन है। (४) कथा को वर्णनात्मक
और सम्वादात्मक बनाने का प्रयत्न किया गया है। केशव को
वर्णन विशेष प्रिय है; क्योंकि एक तो कविप्रिया के मतानुसार
वर्णन अलंकार के अन्दर आता है जो उनका प्रिय विषय है,
दूसरा पांडित्य और बहुज्ञता के दिखाने का मौका मिलता है, तीसरे
अधिकांश वर्णनों मे अलंकारों का प्रयोग करने को मिला है।

(५) कथा में स्थान-स्थान पर शृङ्गार का पुट मिलता है। यद्यपि जहाँ तक सीता का सम्बन्ध है कुछ मर्यादा लिये हुए है।

इक्कीसवें प्रकाश में राम-भरत-मिलाप और बाइसवें में अवध-प्रवेश का वर्णन होकर कथा समाप्त हो जाती है। छब्बीसवें मे राज-तिलकोत्सव वर्णन है। शेष प्रकाश वर्णनात्मक हैं जिनमें राम के राज-वैभव और राज-विहार का वर्णन है। तैंतीसवें प्रकाश से शम्बुक-वध और वाल्मीकि के उत्तरकांड की कथा शुरू होती है। उन्तालीसवें प्रकाश में राम-सीता मिलन के बाद इस कथा की भी समाप्ति हो जाती है। चौंतीसवाँ प्रकाश असम्बंधित उपाख्यानों और मठधारी निन्दा और मथुरा माहात्म्य-वर्णन जैसे अप्रासांगिक विषयों से भरा है। तुलसी की तरह केशव भी रामादि का स्वर्गारोहण नहीं दिखाते। राम अपने और सहोदरों के पुत्रों में राज्य-वितरण कर देते है और उन्हें शिक्षा देते हैं और केशव उन्हे यहीं छोड़ देते है—

यहि विधि शिप दै पुत्र सव विदा करे दै राज
राजत श्री रघुनाथ सङ्ग सोभन वन्धु समाज

(३६वाँ प्रकाश, छन्द ३७)

केशव की कथा का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इस कथा की दो भागों मे विभक्त हो जाती है। पहले भाग में विश्वामित्र-आगमन से लेकर राज्याभिषेक तक की कथा है। इसका विस्तार छब्बीस प्रकाशो में है। तैतीसवें प्रकाश से उन्तालीसवे' प्रकाश तक सीता-वनवास की स्वतंत्र कथा है। बीच के सात प्रकाशो मे राम के ऐश्वर्य का वर्णन है। दोनो कथाओं मे किसी प्रकार का अनुपात नहीं है। अनेक असम्बधित प्रसंग बीच मे आ जाते है जिनसे कथा के विकास मे बाधा पड़ती है। जैसा हम पहले कह आये हैं, विश्वामित्र-आगमन से राज्याभिषेक तक की कथा का आधार वाल्मीकि रामायण है। हमे यह स्मरण

रखना चाहिए कि कवि ग्रन्थारम्भ में वाल्मीकि को स्वप्न में देखता है और उन्हीं के आदेश से काव्य लिखता है। ऐसी अवस्था मे यदि उसके काव्य का आधार वाल्मीकि न होते तो आश्चर्य का विषय होता। परन्तु वाल्मीकि की कथा को विस्तार-पूर्वक स्वीकार करते हुए भी केशवदास ने नवीनता का समावेश किया है—

१—प्रकरी और पताका के रूप में (इसमे कवि प्रसन्नराघव और हनुमन्नाटक से प्रभावित है।)

२—वार्तालाप इन्ही ग्रन्थो का आधार है परन्तु साथ ही केशव का सम्वाद उनके अपने राज-दरबार के अनुभवों से विकसित हुआ है।

३—जहाँ काव्य की छटा दिखलाई गई है वहाँ उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं का महल खड़ा किया गया है।

४—विविध वर्णन-प्रसंग जो कथा को अलंकृत करते है, उसे किसी तरह आगे नहीं बढ़ाते। वास्तव मे यदि वर्णनों और काव्य-कुतूहलजनक स्थलो को हटा लिया जाय तो कथोपकथनों को छोड़ कर कथा इतनी संक्षेप निकले कि कुछ ही पृष्ठो में कही जा सके। केशव की रामचन्द्रिका कथा-वैचित्र्य या कथा-निर्वाह के लिए लोकप्रिय है भी नहीं, उसकी विचित्रता उसके काव्य-प्रकरणो में है। प्रबन्धात्मकता तो उसमे नाम को नहीं है। जिस ग्रन्थ में कथा कहने के लिए तीन-चार सौ छन्दों का प्रयोग हुआ है और जिसका लगभग प्रत्येक पद नया छन्द है, उसमे प्रबन्ध की सरसता और उसका प्रवाह कैसे सम्भव है? रामकथा-काव्य के लिए आरम्भ-शिला मान ली गई है—इससे अधिक उसका मूल्य नहीं। इसीलिए कथा संक्षेप मे है, और कथा से इतर वस्तु ही विशेष द्रष्टव्य है। संवाद में न तुलसी के भक्त-हृदय की आकुलता थी

जो विवाह जैसे मौलिक प्रसंग की कल्पना करते और कथानक को भक्तिपरक मोड़ देते, न उनमें इतनी प्रतिभा थी कि रामकथा के नये अछूते पहलू खोजते और उन्हें काव्य-रस से सिक्त कर पाठकों के सामने रखते। वे अनुभूति-प्राण कवि भी नहीं हैं। शास्त्र-पंडित आचार्य कवि केशवदास की रामचन्द्रिका उनके व्यक्तित्व का सविशेष प्रकाशन है और इसी रूप में वह सदा प्रतिष्ठा पाती रही है। केशवदास ने परम्परागत राम-कथा को पूर्णतः स्वीकार कर लिया है, केवल यहाँ वहाँ कुछ परिवर्तन विस्तार में कर दिये। जो नये प्रसंग भी गढ़े, जैसे राम का जल-विहार और केलि-क्रीड़ा, वे भक्ति तो क्या सुरुचि के भी पोषक नहीं, परन्तु दरबारी कवियों के बादशाह में रुचि-शैथिल्य और रुचि-अपरिष्कार मिले तो भी आश्चर्य नहीं। उन्होंने राजा राम के साकेत जीवन को इन्द्रजीत का जीवन बना दिया है।

यदि रामचन्द्रिका के असम्बन्ध वर्णनों और प्रसंगों को निकाल दिया जाय और केवल कथा-प्रसंग को रहने दिया जाय तो केशव की सारी कला ताश के महल की तरह ढह जायगी। वस्तु-विधान की दृष्टि से न उसमें मौलिकता है न सौष्ठव। जहाँ कथा के मार्मिक प्रसंग आते हैं वहाँ केशव दृष्टि भी नहीं उठाते। ऐसे स्थलों को छोड़कर वे ऐसे वर्णन और प्रसग भर देते है जो जी उबाने वाले हैं और जिनमें सिवा पांडित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति के और कुछ नहीं मिलता। नदी, वाटिका, नगर, वन इनके वर्णन दो-दो क्यों होने चाहिए? राम को राज्यश्री से विरक्ति क्यों हो गई? सनाढ्योत्पत्ति को स्थान क्या इसलिए नहीं मिला कि केशव सनाढ्य थे? वास्तव में तीसवें प्रकाश के बाद केशव रामचन्द्रिका को ज्ञान-विज्ञान का कोष बना रहे है, अनेक प्रकाश कथा की दृष्टि से व्यर्थ हैं और जिन प्रकाशों में कथा है भी

उनमें कथावस्तु इतनी स्थान नहीं घेरती जितनी असम्बधित वस्तुएँ और काव्य-चमत्कार की बाते।

(२) चरित्र-चित्रण

केशव की अधिकांश कथा पहले बीस प्रकाशों मे समाप्त हो गई है, अतः चरित्र-चित्रण की दृष्टि से शेष प्रकाश महत्वहीन हैं। इन बीस प्रकाशो मे कथा कम है, वर्णन अधिक है। जब कथा के सौष्ठव का ध्यान ही नहीं रक्खा गया, तो फिर चरित्र-चित्रण मे विशेषता का विकास कैसे हो सकता। फिर भी कथा के नाते पात्रो का कोई रूप बनता ही है। इस शीर्षक के नीचे हम उसे ही स्पष्ट करने की चेष्टा करेंगे।

राम—केशव के राम परब्रह्म और अवतार हैं ऐसा निर्दिष्ट परन्तु उनके चरित्र मे राजकुमार और महाराजा राम को ही चित्रित किया गया है। इसी से मर्यादा की वह भावना वहाँ नहीं जो तुलसी मे है। राम विश्वामित्र के साथ वन मे पहुँचते है कवि लिखता है—

> कामवन राम सब वास तरु देखियो
> नैनसुख दैन मन मौन मय लेखियो

(राम ने कामवन मे पहुँच कर वहाँ के रहनेवाले मुनियो के निवासस्थान और वृक्षो को देखा जो ऐसे सुन्दर थे कि आँखो को सुख मिलता था और मन कामनामय हो उठता था)। परन्तु राज-धर्म का इनके राम को पग पग पर ध्यान है। ताड़का का मारना है परन्तु,

> बान तानि राम पै न नारि जानि छाँडि जाय (तीसरा प्रकाश)

तब विश्वामित्र स्त्री-वध की पूर्व-कथाओ से उन्हे परिचित कराते हैं। और कहते है—

द्विज दोषी न विचारिये कहा पुरुष कहँ नारि
राम विराम न कीजिये वाम ताड़िका मारि

तब राम ताड़का को मारते है। पात्रों के मनोगत भावों और भाषा के विषय में तो केशव बहुत स्वच्छन्द हैं। उनके राम भी अच्छी-अच्छी उत्प्रेक्षा कहते हैं—

व्योम में मुनि देखिये अति लाल श्रीमुख भाजहीं
सिधु में बड़वाग्नि की जनु ज्वालमाल विराजहीं
पद्मरागानि की किधौ दिवि धूरि पूरित सी भई
सूर-वाजिन की खुरी अति तिक्षता तिनकी हई

(हे मुनि देखिये, लाल मुखश्री वाले सूर्य आकाश मे कैसी शोभा दे रहे है, मानो समुद्र मे बड़वाग्नि की ज्वालाओं का समूह एकत्र होकर विराज रहा हो। अथवा सूर्य के घोड़ो के अति तीक्ष्ण खुरों से पूर्ण की हुई पद्मरागमणियों की धूल से सारा आकाश प्रेरित-सा हो गया हो।)

इसी प्रकार श्लेष का प्रयोग भी उनको नहीं पचता। जनक-पुरी की प्रशंसा मे कहते हैं—

तिन नगरी तिन नागरी प्रति पद हंसक हीन
जलज हार सोभित न जहँ प्रगट पयोधर पीन

जहाँ प्रतिपद = हर एक पैर में (२) पद पद पर
हंसक = (१) बिछुआ (२) हंस और नल
जलज = (१) मोती (२) कमल
पयोधर = (१) कुच (२) जलाशय
पीन = (१) पुष्ट (२) बड़े-बड़े

ये स्थल इसलिए उद्धृत किये गये है कि केशव के धर्म-विलास से चरित्र-चित्रण मिलाना अस्वाभाविक हो गया है, इसका आभास मिल जाय। केशव अपने पात्रों को अपनी उँगली पर नचाते हैं;

...स्वयं राम के चरित्र को उनके कर्मों द्वारा प्रकट ही नहीं होने देते
...परन्तु विश्वामित्र के मुँह से जनक के प्रति कहलवा भर
...ा है—

दामिन के शील, पर दान के प्रहारी दिन,
दान कारि ज्यो निदान देखिये सुभाय के
दीप दीपहू के अवनीपन के अवनीप,
पशु रूप केशोदास दाय द्विज गाय के
आनन्द के कन्द सुर पालक से बालक ये,
पर दार प्रिय साधु मन वच काय के
देह धर्म धारी पै विदेह राज जू से राज,
राजत कुमार ऐसे दशरथ राय के

इससे उनकी राम-विषयक मान्यता तो प्रगट होती है परन्तु घटना और व्यवहार की दृष्टि से यह चरित्र नहीं फूटता। परशुराम-प्रसंग मे राम का राजकुमार-योग्य नम्र व्यवहार देखने लायक है—

राम देखि रघुनाथ रथ ते उतर वेगि दै
गहे भरथ को हाथ आवत राम विलोकियो
सह भरत लक्ष्मण राम। चहुँ किये आनि प्रणाम
भृगुनन्द आशिष दीन। रण होहु अजय प्रवीन

परन्तु अंत मे जब परशुराम विश्वामित्र पर व्यंग करते हैं तो राम क्रुद्ध होकर युद्ध के लिए तत्पर हो जाते है; शिव जी के वहाँ पर प्रगट होने से अनर्थ होते-होते बच जाता है। जैसा हमने अन्य स्थल पर प्रगट किया, इस सारे प्रसंग मे केशव ने सचेष्ट होकर मौलिक बनने की चेष्टा की है. परन्तु वे राम के चरित्र का किसी प्रकार विकास नहीं कर सके। तुलसीदास ने इसी प्रसंग मे राम का कहीं सुन्दर चित्रण किया है।

इस प्रसंग के बाद राम-चरित्र-चित्रण के लिए दूसरा अवसर आता है अयोध्याकांड में, परन्तु वहाँ तो केशव राम को दशरथ और कैकेयी के सामने तक उपस्थित नहीं करते। पिता ने वर दिया है—

उठ चले विपिन कहँ सुनत राम
तजि तात मात तिय बन्धु धाम

परन्तु आगे चल कर कवि औचित्य की सीमा का उल्लंघन कर राम से दुखी माता को नारिधर्म का उपदेश दिलवाता है और यहाँ तक कि भावी-निर्देश के लिए उनके मुँह से विधवा-वर्णन भी करा देता है। इससे उनकी अस्वाभाविक चित्तवृत्ति का ही पता चलता है जो अक्षम्य है। राम-जानकी-सम्वाद लक्ष्मण के सामने हो रहा है परन्तु केशव कहे डालते हैं—

सुनि चंदवदनि गजगामिन एनि, मन रुचैसो कीजै जलज नैनि

यहाँ वन के दुख लक्ष्मण बताते है, राम नहीं।

बाद की चित्रकूट आदि की सारी कथा एक प्रकाश मे ही कह डाली है इसमें राम का चित्रण कहाँ हो सकता है ? यहाँ वे भरत से अपनी बात पर हठ तो करवाते है और गंगा अवतीर्ण होकर सब शान्त कर देती है। इस प्रकार अयोध्याकाण्ड मे (जो रामकथा के पात्रों के चरित्र-चित्रण की दृष्टि मे अमूल्य है) कथा सूचनिका मात्र रह जाती है।

चित्रकूट मे राम-सीता के संयोग-शृंगार का वर्णन राम के चरित्र को गिराता ही है, उठाता नहीं। तुलसी ने इस प्रसंग पर मौन रह कर काव्य-मर्मज्ञता का ही परिचय दिया है।

बालि-बध की नीति को राजनीति की ओट मे करने की चेष्टा की है—

अति सङ्गति वानर की लघुताई
अपराध बिना वध कौन बड़ाई

हति वालिहि देउँ तुमहिं नृप शिच्छा
अब हो कुछु मोच्छ ऐसिय इच्छा

परन्तु बालि के पूछने पर—

मै शरणागत हिते हते प्रान

शेष चरित्र मे राजनीतिज्ञ की कुशलता के अतिरिक्त कोई नवीनता नहीं है। यहाँ सीता स्वयं अग्नि मे प्रवेश करती हैं। राम ने न कोई कटु वचन कहे, न इस प्रकार की इच्छा ही प्रगट की है। परन्तु इन छोटी-मोटी बातो से चरित्र मे कोई विशेषता नहीं आती। अंत मे कवि राम के ब्रह्म स्वरूप को उद्घाटन कर देता है—

राम सदा तुम अन्तर्यामी
लोक चतुर्दश के अभिरामी
निर्गुण एक तुम्हें जाका जानै
एक सदा गुणवन्त बखानै
ज्योति जगै जग मध्य तिहारी
जाइ कही न सुनी न निहारी
कोउ कई परिमान न ताको
आदि न अन्त न रूप न जाको

यही नहीं बल्कि और भी आगे बढ़ जाते हैं—

गुण सत्व धरे तुम रच्छन जाको
अब विष्णु कहै सगरो जग ताको
तुमही जग रूप सरूप सँहारो
कहिये तेहि मध्य तमोगुण भारो

× × ×

तुमही धर कच्छप वेष धरोजू
तुम मीन ह्वै ब्रह्म को उधरो जू

तुम ही जग यज्ञवराह भए जू
छिति छीनि लई हिरनाछ हिए जू
तुमही नरसिंह को रूप सँवारो
प्रह्लाद को दीरघ दुःख निवारो
तुमही बलि बावन वेष छलो जू
भृगुनन्दन ह्वै छिति छत्र दलो जू
तुमही यह रावण दुष्ट सँघारो
धरणी महँ बूडत धर्म उबारो
तुम ही पुनि कृष्ण को रूप धरोगे
हति दुष्टन को भू भार हरोगे
तुम बौध सरूप दयाहि धरोगे
पुनि कलिङ्क ह्वै म्लेच्छ समूह हरोगे

परन्तु सारे कथा-भाग में इस महत्ता का विकास होता कब है ? वास्तव में अपने युग की राम की ब्रह्म-भावना को केशव एकदम छोड़ नहीं सकते हैं, वे जनता की भक्तिभावना को दृष्टि की ओट कर सकते थे। इससे उनका महाराज राम का राजसी चरित्र भी अधूरा रह गया। उन्हें कथा के अंत में कई प्रकाश अलग से राम की राज-विभूति दिखाने के लिए लिखने पड़े। इस लक्ष्य भेद के कारण उनके राम न ब्रह्म है, न अवतारी, न पूर्ण रूप से महाराज, न लीला-पुरुष। पग-पग पर नवीनता का आग्रह करने के कारण केशव एकांततः असफल रहे हैं।

भरत—भरत के चरित्र का चित्रण तुलसी में अयोध्याकांड उत्तरार्द्ध का विषय है। तुलसी के पूर्व के किसी कवि ने उसे इस विस्तार, इस तन्मयता और सजीवता से नहीं कहा। केशव ने सारे प्रसंग को संक्षेप में रखा है। भरत की राम-विषयक भक्ति एक पंक्ति से भी प्रगट नहीं होती। हाँ, केशव ने भरत को परशु-राम सम्वाद लाने और लक्ष्मण की भाँति उद्धत बनाने की चेष्टा

की है। इस मौलिकता से कुछ लाभ नहीं हुआ। भरत के लोक विश्रुत चरित्र के सामने यह प्रसंग ही अस्वाभाविक हो उठता है।

शत्रुघ्न—परशुराम-प्रसंग मे शत्रुघ्न का भी चित्रण है। वे उद्धत साहसी राजकुमार भर हैं।

लक्ष्मण—इनके चित्रण का मुख्य स्थान परशुराम-प्रसंग है और वहाँ भरत आदि का प्रवेश होने से लक्ष्मण की एकांत महिमा घट गई है। वीर साहसी नवयुवक राजकुमार के रूप में ही वे उपस्थित हैं। इस प्रकार का चरित्र परम्परा से ही प्राप्त हो गया है।

दशरथ—केशव मे दशरथ का चरित्र-चित्रण केवल एक स्थल पर आता है जब विश्वामित्र राम को माँगने के लिए आते हैं। वे अवधपुरी के वैभव के वर्णन से परोक्ष मे राजा दशरथ का वर्णन कर देते हैं। परन्तु दशरथ के हृदय को, उनके पुत्र को, रामभक्ति को उन्होने कहाँ समझा है। अयोध्या के पूर्वार्द्ध कथा भाग से दशरथ का ही चारित्रिक एवं मानसिक संघर्ष है। वह यहाँ कहाँ है—सारे प्रसंग को दो-चार पंक्तियो मे ही भर दिया गया है—

दशरत्थ महा मन मोद रये
तिन बोलि वशिष्ठ सों मन्त्र लये
दिन एक कहो सुभ सोभ रयो
हम चाहत रामहिं राज दयो
यह बात भरत्थ की मात सुनी
पठऊँ बन रामहि बुद्धि गुनी
तेहि मन्दिर मे नृप को विनयो
वर देहु हुतो हमको जु दियो
नृप बात कही हँसि हेरि हियो
वर माँगि सुलोचनि मै जु दियो

नृपत सुविसेस भरत्थ लहैं । बरसै बन चौदह राम रहैं
यह बात लगी उर वज्र तूल । हिम काट्यो ज्यो जीरन दुकूल
तजि तात मातु पिय बन्धु गन ।

ऐसी परिस्थिति मे क्या किया जाय ?

कैकई—राम-कथा की सबसे अधिक मनोवैज्ञानिक समस्या कैकई का चरित्र जरा भी प्रस्फुटित नहीं हुआ है । वरदान माँग लेने का उल्लेख मात्र है परन्तु उसकी किसी प्रकार की प्रतिक्रिया परिणित नहीं है ।

कौशल्या—कौशल्या तुलसी की आदर्श राम माता नहीं । वे राम से जो कहती हैं उसमे उसका सपत्नी द्वेप और दशरथ के प्रति शिष्टता-हीन क्रोध स्पष्ट हो जायगा । मर्यादाभाव के समर्थक तुलसी क्या कौशल्या के इस हीन असंस्कृत कथन की कल्पना भी कर सकते थे—

रहौ चुप ह्वै सुत क्यों वन जाहु
न देखि सकैं तिनके उर दाहु
लगी अब बाय तुम्हारेहि काय
करै उलटी विधि क्यो कहि जाय

स्पष्ट है कि चरित्र-चित्रण के क्षेत्र मे केशव की क्षमता पगु रही है और उसने अनिष्ट ही अधिक किया है ।

सुमित्रा—अनुपस्थित है ।

सुग्रीव और बालि—विशेप चित्रण नहीं । बालि ने राम को वध के लिए जो उलाहना दिया है वह भी शरणागत वत्सलता कह कर दूर किया है । बालि ने सुग्रीव-पत्नी (तारा) पर बलात्कार किया ।

रावण—रावण राजा है, इस नाते कुछ विशेपताएँ लाई गई है । केशवदास का रावण (१) वाक्-पंडित है, (२) राजधर्म का

...जानने वाला है, (३) अमित ऐश्वर्य का स्वामी है, (४) अहंवादी योद्धा है। उसके वाक् विलास के लिए रावण-अंगद-सम्वाद और युद्ध में राम से वार्तालाप देखने योग्य है। रावण सीता को भाँति-भाँति के राम के रूप दिखाता है। तुलसी ने मर्यादा ...भावना और शिष्टता के नाते इस प्रसंग का विस्तार नहीं ...किया है। अंगद-सम्वाद से उसकी राजनीति-पटुता भी झलकती ...। परन्तु इन कुछ स्थलों से काव्य विशेष अनुप्राणित नहीं होता।

अन्य चरित्र—अन्य चरित्रों में वाल्मीकि के इन्हीं चरित्रों से कुछ भी विशेषता नहीं है।

वास्तव में केशव को वाग्विलास प्रिय है। उनके अधिकांश ...व्यर्थ से वाग्जाल रचते हैं। राम, रावण, लक्ष्मण—सभी ...कुछ कहने से नहीं चूकते। राज-दरबार की शून्य पांडित्य से भरी श्लेषपूर्ण वाणी पग-पग पर आपको मिलेगी—परन्तु किसी चरित्र को विशेष वाक्पटु बना देने से ही उसमें कोई नवीनता नहीं आ जाती। इसलिए हम कहते हैं कि चरित्र-चित्रण की दृष्टि ...से रामचन्द्रिका आश्चर्यजनक रूप से असफल है। जो कवि कथा को ही सुचारु रूप से विकसित नहीं कर सका उससे चरित्र-चित्रण में साफल्य की आशा ही क्या की जाय।

३—रस

रामचन्द्रिका निश्चय ही उस प्रकार भक्ति-ग्रन्थ नहीं है जिस प्रकार रामचरित-मानस है। उसमें लौकिक रस के ऊपर किसी भी आध्यात्मिक रस की प्रतिष्ठा नहीं है। अतः उसे काव्यशास्त्र ...अन्तर्गत रसों के सामने रख कर ही विचार करना ठीक होगा। ...भाव-स्वरूप यह कह देना उचित है कि—

१—छंदों के पग-पग पर बदलने से रस-परिपाक में बाधा ही नहीं पड़ी है, उसको बहुत कुछ अभाव हो गया है।

२—केशव की दृष्टि चमत्कार और पांडित्य-प्रदर्शन पर अधिक है जिनका रस से किसी प्रकार सम्बन्ध नहीं है। ये वस्तुएँ हृदय को उद्वेलित नहीं कर सकतीं, भले ही मस्तिष्क को चमत्कृत कर दें। चमत्कार-प्रदर्शन के लिए अलंकारों पर दृष्टि रक्खी गई है। और पांडित्य प्रदर्शन के लिए धर्म-नीति और राजनीति को चुना गया है।

३—केशव के काव्य का रूप छंद के बदलने के कारण कुछ नाट्यकीय तो अवश्य हो गया है परन्तु मूल रूप से वर्णनात्मक है। जिस प्रकार के अनेक वर्णन रामचन्द्रिका मे है उनसे किसी भी रस की सृष्टि नहीं होती।

इस साधारण कथन के बाद अब हम केशव के रस-निरूपण पर विस्तारपूर्वक विचार करेंगे।

रामचन्द्रिका मे वात्सल्य का नाम भी नहीं है। यद्यपि लव कुश प्रसंग में इसकी योजना हो सकती थी। केशव ने राम के वयस्क रूप को ही सामने रखा है, अत: स्वयं राम की बाल-क्रीड़ा का वर्णन तो हो ही नहीं सका है। करुण-रस के प्रसंग तो कई आए हैं; जैसे, वनगमन, दशरथ-मरण, सीता-निर्वासन, और लक्ष्मण-शक्ति घात के प्रसंगों मे, परन्तु केशव उनसे लाभ उठा नहीं सके। इस कोमल रस को छूने की क्षमता उनमे नहीं थी। युद्ध के प्रसंग मे वीर, रौद्र और भयानक रसों का निरूपण हुआ है यद्यपि छन्दों की शृङ्खला मे उनका स्वरूप स्पष्ट नहीं हो पाता। शांत रस की प्रचुर मात्रा धर्म-ज्ञान-सम्बन्धी पदों में मिलती है, परन्तु ग्रन्थ का मूलभाव शान्त-रस से सम्बन्धित न होने के कारण इस रस का परिपाक भी नहीं हो सका है।

रामचन्द्रिका मे शृङ्गाररस के संयोग और वियोग अंगों का सुन्दर चित्रण है यद्यपि केशव प्रसन्नराघव से परिचित है, परन्तु वे पूर्वराग के प्रसंग को नहीं लेते—शायद इसलिए छोड़ देते है कि उसे राज्योचित नहीं समझते। तुलसी की तरह वे भी शृङ्गार मे मर्यादा का पालन करते है। उद्दीपन के रूप में प्रकृति का प्रयोग विशद हुआ है और विरह की उन्माद दशा के सुन्दर चित्र है। यह अवश्य है कि श्लेषो की भरमार ने विरह-वर्णन को कुण्ठित कर दिया है परन्तु यह तो केशव की मूल प्रवृत्ति ही थी। जो हो, शृङ्गार केशव का प्रकृत-क्षेत्र था और उसके चित्रण में केशव को सफल होना ही चाहिए था। संयोग के लिए रामचरित-मानस मे अधिक स्थान है—राजा राम की दिनचर्या मे शृंगार की योजना की गई है। इस प्रकार स्पष्ट है कि केशव संयोगशास्त्र मे भी मर्यादित रहे है।

रामचन्द्रिका का विषय रामकथा है परन्तु तुलसी की भाँति नहीं। केशव राजा राम और राजरानी सीता को चित्रित कर रहे है, अतः उनके आहार-विहार भी राज के ऐश्वर्य से भरे है; इसी-लिए वे शृङ्गार को स्थान देते हैं। वास्तव मे शृङ्गार की ओर उनका स्वाभाविक आग्रह था। इसी से उन्होने कथा के शृङ्गार रस-पूर्ण प्रसगो पर लेखनी खूब चलाई है। शृङ्गार-साहित्य सम्बन्धी सारा पांडित्य भर दिया है। फिर भी केशव कुछ सतर्क अवश्य है। इसका कारण भक्तिभावना नहीं है, उनके युग की रामसीता के सम्बन्ध से मान्यता है। सम्भव है तुलसी का प्रभाव हो।

शृङ्गाररस का आलबन नायक और नायिका का सौन्दर्य है। पहले हम इसे ही लेगे। केशव ने राम का सौन्दर्य इस प्रकार वर्णित किया है—राम का नख-शिख-वर्णन पलकाचार के समय हुआ है जो इस प्रकार है—

गङ्गाजल की पाग सिर सोहत श्री रघुनाथ
शिवसिर गङ्गाजल किधौं चंद्रचंद्रिका साथ
कछु भृकुटि कुटिल सुवेश। अति अमल सुमिल सुदेश
विधि लिख्यो शोधि सुतन्त्र। जनु जयाजय के मन्त्र
जदपि भृकुटि रघुनाथ की कुटिल देखियत जोति
तदपि सुरासुर नरन की निरखि शुद्ध गति होति
श्रवण मकर कुण्डल लसत मुख सुखमा एकत्र
शशि समीप सोहत मनो श्रवण मकर नक्षत्र
अति वदन शोभ सरसी सुरङ्ग। तहँ कमल नैत्र नासा तरङ्ग
जन युवति चित्त विभ्रम विलास। तेइ भ्रमर भँवत रसरूप आस
सोभि जति देत रुचि शुभ्र उर आनिये
सत्य जनु रूप अनुरूपक बखानिये
ओठ रुचि रेख सविशेष सुख श्री रये
सोधि जनु ईश शुभ लक्षण सबै दये
ग्रीवा श्री रघुनाथ की लसत कंबु वर वेष
साधु मनोवच काय की, मानो लिखी त्रिरेख
सोभन दीरघ वाहु विराजत। देव सिहात अदेवन लाजत
वैरिन कौ अहिराज बखानहु। है हितकारन की द्विज मानहु
यों उर भृगुलाल बखानहु। श्रीकर को सरसीरुह मानहु
सोहत है उर मे मणि यों जनु। जान किकी अनुराज रह्यो जनु
सोहत जनरत राम उर देखत तिनको भाग
आप गयो ऊपर मनो अन्तर को अनुराग

(श्री रघुनाथजी के सिर पर यह गङ्गाजल की पगड़ी है, या शिवजी के सिर पर सचमुच गङ्गाजल ही है जिसमे चंद्रमा की किरनो की छटा भी संयुक्त है। भौहे किंचित टेढ़ी, सुन्दर, निर्मल, सुचिक्कन तथा उचित लम्बी-चौड़ी है। जैसे ब्रह्मा ने स्वच्छन्दता-पूर्वक संशोधित करके अपने हाथ से दूसरों को जीतने और स्वयं

अजित रहने के मन्त्र लिख दिये है। यद्यपि रघुनाथ जी की भृकुटि की छवि देखने मे टेढ़ी है, तो भी उससे सुर, असुर और मनुष्यो को शुद्धगति होती है। कानो मे मकराकृत कुण्डल शोभा दे रहे है और मुख की शोभा भी वहाँ एकत्र हो रही है। ऐसा मालूम होता है मानो मकरशकर के अन्तर्गत श्रवण नक्षत्र मे चंद्रमा शोभा दे रहा है। उनके मुख की शोभा एक अत्यंत निर्मल पुष्करिणी है। उसमे नेत्र ही कमल है और नासिका ही तरंगे है और इस शोभा-पुष्करिणी पर युवतीजनों के जो चित्त कौतुक मे भ्रमण करते है, वे ही रूप रूपी मकरंद की आशा से मँडलाते हुए भँवर है। दाँतो की कांति सत्य के रूप की प्रतिभा है। ओठो की दमक से जान पड़ता है, ब्रह्मा ने ढूँढ-ढूँढ कर समस्त लक्षण उन्हीं होठो को दिये है। गला शङ्खाकृति है। वह मन, वच, क्रम तीनो से साधु है; मानो इसके प्रमाण मे उसमे ब्रह्मा ने तीन रेखाएँ दी है। सुन्दर बाहुओ को देखकर देव-अदेव शरमा जाते है। शत्रु के लिए विषधर सर्प है, मित्रो के लिए ध्वजा। उर पर जो पदकमणि है वह मानो उनके हृदय की भक्तवत्सलता ही ऊपर आ गई है)

इसी प्रकार सीता के सौन्दर्य का भी विशद वर्णन है। केशव ने सीता के सौन्दर्य की व्यंजना ही की है, नायिका के रूप मे उनका नखशिख नही लिखा। इस व्यंजना के लिए नये ढंगो का प्रयोग किया गया है—

(१) प्रतीक द्वारा सौन्दर्य की सृष्टि—

को है दमयन्ती इन्दुमती रति रातिदिन, होहि न छबीली छनछवि ज्यो सिंगारिये। केशव लजात जलजात जातवेद ओप, जातरूप बापुरो विरूप सो निहारिये॥ मदन निरूपम निरूप भयो चंद बहु रूप अनुरूप कै पिनाक सो विचारिये। सीताजी के रूप पर देवता कुरूप को हैं, रूप ही के रूपक तौ वारि वारि डारिये॥

(२) रामसीता के आभूषण उन विविध पशुपक्षियों को पहराते है जो स्त्री अंगों के उपमान-स्वरूप काव्यरूढ़ि मे प्रचलित हैं। ११वें प्रभाव के अंतर्गत सीता की गानवाद्य का प्रभाव वर्णन इसी ढंग का है—

जब जब धरि वीना प्रकट प्रवीना बहुगुन शीला सुख सीता
पिय जियहि रिझावे दुखनि भजावै विविध बजावै गुन गीता
तजि मति संसारी विपिन विहारी सुखदुख कारी घिरि आवै
तब तब जगभूपण, रिपुकुल दूपण, सबकौ भूषण पहिरावै
कबरी कुसुमानि सिखीन दई। गज कुम्भनि हारनि शोभमई
भृकुटी सुक सारिक नाक रचे। कटि केहरि किंकिणि शोभ रुचे
दुलरी कठ कोकिल कंठ बनी। मृग खंजन अजन शोभ घनी
नृप हंससि नूपुर शोभ भरी। कल हसनि कठनि कंठ सिरी
मुखवासनि वासित कीन तबै। रण गुल्म लता तरु मैल भवै

सीता के हरण के अवसर पर भी इसी शैली के एक परिवर्ति रूप का प्रयोग है—

सरिता इक केशव सोभ रही। अवलोकि तहाँ चकवा चकई
उर मे सिय प्रीति समाय रही। तिनसो रघुनायक बात कही
अवलोकत है जबही जबही। दुख होत तुम्हे तबही तबहीं
वह वैर न चित्त कछू धरिये। सिय देहु जताय कृपा करिये
शशि को अवलोकन दूर किये। जिनके मुख की छवि देखि जिये
कृति चित्त चकोर कछूक धरो। सिय देहु बताय सहाय करो
(१२वाँ प्रकाश)

(३) केशव सखियों के असीम सौन्दर्य और नखशिख वर्णन करके सीता के सौन्दर्य की व्यजना करते है—

तहँ सोभिजै सखि सुन्दरी जनु दामिनी वपु मण्डिकै
घनश्याम को तनु सेवही जड़ मेघ ओघन छण्डिकै

यक अंग चर्चित चारुचंदन चद्रिका तजि चंदको
जुन राहु के भय सेवही रघुनाथ आनंद कद को
मुख एक ही नत लोक लोचन लोल लोचन के हरे
जनु जानकी अँग सोभिजै शुभ लाज देहहि को धरे
तहँ एक फूलन के विभूषन एक मोतिन के किए
जनु छीरसागर देवता तन छीर छीरन को दिए
पहिरे वसन सुरग, पावक सुत स्वाहा मनो
सहज सुगंधित अंग, मानहु देवी मलय की

(छठवाँ प्रकाश)

३१वे प्रकाश मे रनिवास बाग़ मे जाता है तो राम छिपकर रनिवास की स्त्रियो की बनवहार देखते है। यहाँ शुक नाम का एक दास राम से सखियो का "नख-शिख" कहता है। पूरा प्रकाश व्यंजना से सीता के सौन्दर्य को ही अंकित करता है।

(४) मार्ग मे स्त्रियाँ सीता के मुख सौन्दर्य का वर्णन उसी प्रकार करती है जैसे तुलसी के 'मानस' मे। रामचन्द्रिका में संयोग और विप्रलंभ दोनो का वर्णन है। संयोग शृङ्गार मे पूर्वराग की कल्पना नहीं है, वह "प्रसन्नराघव" के आधार पर "मानस" से है। वनगमन के समय संयोग का थोड़ा चित्रण है—

कहुँ बाग तड़ाग तरंगिनि तीर तमाल की छाँह विलोकि घनी
घटिका यक बैठत है सुखपाय बिछाय तहाँ कुस काँस घनी
मग को श्रम श्रीपति दूर करै सियको शुभ वाकल अञ्चल सों
श्रम तेउ हरैं तिनको कहि केशव चञ्चल चारु दृगञ्चल को

(नवाँ प्रकाश)

पञ्चवटी-प्रसग (११वां प्रकाश) के सीता के गानवाद्य में भी संयोग का ही चित्रण है। इसके अनंतर ३०वे प्रकाश से ३२वे प्रकाश

तक संयोग का ही चित्रण है, साथ ही राम के ऐश्वर्य का भी चित्रण हो जाता है। सारा संयोग शृङ्गार मर्यादित है। इस पर कृष्णकाव्य की विशेष छाया नहीं पड़ी जान पड़ती। सीताराम के केलि-विलास का चित्रण केशवदास का ध्येय नहीं है।

विप्रलंभ शृङ्गार का प्रारम्भ सीताहरण (१२वाँ प्रकाश) से होता है। राम-वियोग-प्रलाप, पंपासर-वर्णन, वर्षाशरद्-वर्णन, हनुमान-सीता-सवाद, राम का विरह-वर्णन—इन सबमे विप्रलंभ कथा को लेकर ही प्रस्फुटित हुआ है। वास्तव मे राम-कथा मे विप्रलंभ चित्रित करने के मार्मिक प्रसंग है। केशव ने इनसे लाभ उठाया है।

४—अलंकार

केशव "अलंकारवादी" है—"चमत्कार" उन्हे विशेष प्रिय है—इससे उनकी काव्य मे अलंकारो को रस की अपेक्षा अधिक महत्त्व मिला है। सच तो यह है कि अलंकारो की प्रचुरता और उनके असंयमित व्यवहार के कारण केशव का काव्य क्लिष्टता से दूषित हो गया है और उसमे रस का एकदम अभाव हो गया है।

केशव को दो प्रकार के अलकार प्रिय है—(१) जो उनके पांडित्य को संतुष्ट कर सके। श्लेष, परिसंख्या और रूपक इस प्रकार की अलंकार है। (२) जो उनकी कल्पना को मूर्त कर सके। उत्प्रेक्षा इसी श्रेणी मे आती है। अन्य प्रिय अलकार है—उपमा, परिकुरांकुर, संवधातिशयोक्ति, विरोधाभास, अपन्हुति, मुद्रालंकार। वैसे अनेक अन्य अलंकार भी उपस्थित किये जा सकते है। यह समझ लेना होगा कि केशव की रचनाओ मे अलकार का प्रयोग भावपुष्टि के लिए न होकर स्वतः अलकार के लिए हुआ है।

केशव का सबसे प्रिय अलंकार उत्प्रेक्षा है क्योंकि इस अलंकार के प्रयोग से उन्होंने कल्पना की बेपर उड़ाने मारने का अच्छा मौका मिलता है। जहाँ किसी की भी कल्पना नहीं पहुँच सकती वहाँ उनकी कल्पना पहुँच जाती है। उनकी उत्कट कल्पना के नमूने रामचन्द्रिका के किसी भी पन्ने को उलट कर देखने से मिल सकते है। यहाँ एक दो ही उदाहरण काफी होंगे—

लंका मे आग लगी है—

> कञ्चन को पघल्यो पुर पूर पयोनिधि मे पसर्‌यो सो सुखी है
> गंग हजारमुखी गुनि कैसे गिरा मिली मानो अपार मुखी है

अग्नि के बीच बैठी हुई सीता को देखकर उद्दीप्त हुई केशव की कल्पना अत्यन्त चमत्कारक है—

> महादेव के नेत्र सी पुत्रिकासी, कि संग्राम की भूमि मे चद्रिका सी
> मनो रत्नसिंहासनस्था सची है, किधौं रागिनी रागपूरे रची है

पुस्तक मे आगे बढ़ते चले जाइये, सारा वर्णन चमत्कार से परिपूर्ण मिलेगा पर केशव की कल्पना मस्तिष्क की उपज है हृदय-जात नहीं। इससे कभी-कभी इनकी कल्पना ऐसे दृश्यों को अलंकार मे सामने रखती है, जिनसे प्रस्तुत वस्तु का असली स्वरूप कुछ भी प्रत्यक्ष नहीं होता पर जिसे प्रत्यक्ष करना अलंकारो का मुख्य उद्देश्य है। × × ×"

"वे एक जगह रामचन्द्र की उपमा उल्लू से दे गये है—वासर की संपति उलूक ज्यों चितवत—और कहीं-कहीं पर प्रस्तुत और अप्रस्तुत वस्तु मे कुछ भी समानता नहीं होती, केवल शब्दसाम्य के बल पर ही अलंकार गढ़ लिये गये है जैसे पंचवटी के वर्णन मे।" "इस शब्दसाम्य के कारण कहीं-कहीं पर तो केशव के पद्य बिलकुल पहेली हो गए है खासकर वहाँ जहाँ उन्होंने सभंगपद-श्लेष के द्वारा एक ही पद्य से दो-दो तीन-तीन अर्थ ढूँढने का

प्रयत्न किया है।" कहीं-कहीं तो अनुप्रास से अनुरोध से वे मर्यादा से भी विचलित हो गए हैं। राम के ऐश्वर्य के सम्बन्ध में एक जगह उन्होंने लिखा है—

वासर की सम्पति उलूक ज्यों न चितवत

इसी तरह दूसरी जगह

काकौ घर घालिवे को बसे कहाँ घनश्याम
घूघू ज्यों घुसन प्रात मेरे गृह आए हो

प्रातःवंदनीय अवतारों को 'उलूक' और "घूघू" बनाने का साहस किस हिन्दू कवि को होगा, विशेषकर उस समय जब वह स्वयम् अपने को इतना भक्त घोपित करता हो।

५—छंद

रामचंद्रिका में केशव ने पिंगल के लगभग सभी छन्दों का प्रयोग किया है जिससे उनका ग्रन्थ उदाहरण-ग्रन्थ हो गया है। पहले प्रभाव में एक वार्णिक छन्द से लेकर अष्ट वार्णिक छन्द तक मिलते हैं। इस प्रकार का प्रयास है कि सारे छन्दों में कथा कही जाय। संस्कृत में भट्टिकाव्य और राघवविजय ऐसे ग्रन्थ हैं जिनमें कवि रामकथा कहता है, परन्तु वस्तुतः उसका विपय अलंकार के उदाहरण उपस्थित करना है। यद्यपि केशव ने रामचन्द्रिका में अलंकारों को भी निरूपित किया है, परन्तु उनका विशेप ध्यान छन्द पर ही है। छन्द अधिक नहीं हैं, इसलिए कुछ छन्द कई बार उपस्थित हैं। इसी तरह का एक प्रयत्न "रघुनाथ गीतांरो" डिंगल ग्रन्थ है। इसमें भी छन्दों के उदाहरण में रामकथा कही गई है। केशव इस प्रकार के प्रयत्नों से परिचित अवश्य थे, अतः उन्होंने काव्य-कुशलता को रामकथा के मत्थे मॅढ़ने की चेष्टा की। उन्होंने छन्द ही तक अपने को सीमित

न रखकर अलंकारों, काव्य-दोषों, काव्य-गुणों, व्यंग सभी के उदाहरण एक ही ग्रन्थ में उपस्थित कर दिये।

६—व्यंग

केशव सुन्दर व्यंग-काव्य लिखते है—वास्तव मे यदि इस ओर उनकी प्रतिभा अधिक आकृष्ट हुई होती, तो अच्छा होता। राम के व्याह के समय नारियो की गालियाँ और अंगद-रावण सम्वाद इस बात के साक्षी है।

७—रामचंद्रिका में सम्वाद

केशव अपने सम्वादो के लिए प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि जिस तरह के सम्वाद केशव ने लिखे है, उस तरह के सम्वाद किसी अन्य कवि ने नहीं लिखे, तुलसीदास ने भी नही। यह अवश्य है कि सम्वाद लिखने के लिए लेखक को ऊँचे दरजे का व्यवहारज्ञान होना आवश्यक है। वह व्यवहारज्ञान ऐसे ही कवि से विशेष रूप से हो सकता है जिसकी दृष्टि लोक-जीवन पर गहरी पड़ती हो और जो लोक-जीवन की धारा में ही बहता हो। सूरदास और तुलसीदास प्रभृति धार्मिक कवियो के लिए लोक-जीवन का ज्ञान उतना आवश्यक नहीं था, वे भक्त थे। उन्हें संसार के आचार-विचार और व्यवहार को लेकर क्या करना इस पर भी उन्होंने अपने अपने क्षेत्रो मे सम्वाद-लेखन मे बड़ी कुशलता दिखाई है।

परन्तु केशव के सम्वाद उस श्रेणी के नहीं है, जिस श्रेणी के तुलसी और सूर के सम्वाद। तुलसी को अपने सम्वादो के लिए प्रसन्नराघव और हनुमन्नाटक का सहारा लेना पड़ा है, सूरदास का "भ्रमरगीत" गोपी-उद्धव-सम्वाद काव्य ही है, परन्तु सम्वाद की अपेक्षा वहाँ "भाव" पर कवि की दृष्टि अधिक है।

केशव भी उन ग्रन्थों के लिए ऋणी है जिनके तुलसी, परन्तु उन्होंने वाग्चातुर्य, व्यङ्ग, परिहास और अनेक मौलिक स्थलों की योजना स्वयं मौलिक रूप से की है।

जिन सम्वादों की आलोचकों ने विशेष रूप से प्रशंसा की है, ये है—(१) दशरथ-विश्वामित्र-वशिष्ठ-सम्वाद (दूसरा प्रकाश), (२) रावण-बाणासुर-सम्वाद (चौथा प्रकाश), (३) जनक-विश्वामित्र सम्वाद (पाचवाँ प्रकाश), परशुराम-सम्वाद (७वाँ प्रकाश), सूर्पनखा-राम-लक्ष्मण-सम्वाद (११वाँ प्रकाश), रावण-हनुमान-सम्वाद (१४वाँ प्रकाश), अङ्गद-रावण-सम्वाद (१६वाँ प्रकाश), लव-कुश-भरतादि-सम्वाद (१६वाँ प्रकाश)। छोटे-छोटे अनेक सम्वाद है परन्तु वे महत्व पूर्ण नहीं हैं। ऊपर लिखे सम्वादों में भी सुमति-विमति-सम्वाद, रावण-बाणासुर-सम्वाद, परशुराम-सम्वाद और रावण-अङ्गद-सम्वाद विशेष महत्व रखते हैं। पहले हम कथा का पहला सम्वाद "दशरथ-विश्वामित्र-सम्वाद" की विवेचना करेंगे। केशव मे यह सम्वाद इस प्रकार है—

बहु भाँति पूजि सुराय। कर जोरिके परि पाय
हँसि के कह्यौ ऋषिमित्र। अब देहु राज पवित्र

विश्वा०—

सुनि दान मानस हंस। रघुवंस के अवतंस
मन माँह जो अति नेहु। एक वस्तु माँगहि देहु

राजा०—

सुमति महामुनि सुनिये। तन धन कौ मन गुनिये
मन महँ हास सु कहिये। धनि सु जु अपुन लहिये

विश्वा०—

राम गये ते बन माँही। राकस वैर करैं कछु घाही
रामकुमार हमै नृप दीजै। तौ परिपूरण यज्ञ करीजै

राजा०—

अति कोमल केशव बालकता। बहु दुस्तर राकस घालकता
हमहीं चलिहैं ऋषि संग अबै। सजि सैन चलै चतुरंग सबै

विश्वा०—

जिन हाथन हठि हरष हनत हरिनी रिपुनन्दन
तिन न करत सहार कहा मदमत्त गयन्दन ?
जिन बेधत सुख लक्ष लक्ष नृप कुँवर कुँवर गनि
तिन बानन बाराह बाघ मारत नहिं सिंहनि
नृपनाथ नाथ दशरत्थ यहँ अकथ कथा नहिं मानिये
मृगराज-राजकुल-कलस कहँ, बालक, वृद्ध न जानिये

राजन के तुम राज बडे अति
मैं मुख मागों सुदेहु महामति
देव सहायक है नृपनायक
है यह कारज रामहि लायक

राजा०—

मैं तु कह्यौ ऋषि देन सु लीजिय
काज करो हठ भूलि न कीजिय
प्राण दिये धन जाहिं दिए सब
केशवराय न जाहिं दिये अब

ऋषि०—

राज तज्यो धनधाम तज्यो सब
नारि तजी सुत सोच तज्यो तब
आपन पै तज्यौ जगवद है
सत्य न एक तज्यो हरिचन्द है

(जान्यो विश्वामित्र के कोप बढ्यो उर आय
राजा दशरथ सों कह्यो, वचन वशिष्ट बनाय)

वशिष्ठ—

इनहीं के तपतेज यज्ञ की रक्षा करिहैं
इनही के तपतेज सकल राक्षस बल हरिहैं
इनही के तपतेज तेज बढ़िहै तन तूरण
कहि केशव जययुत आइहैं इनही के तपतेज वर
नृप वेगि राम लछिमन दोउ सौंपे विश्वामित्रवर

इस प्रसङ्ग और सम्वाद की तुलना हम मानस से करते है तो हम तुलसी और केशव के दृष्टिकोणों का अन्तर स्पष्ट हो जाता है; तुलसी कहते है—

दशरथ०—

(तव मन हरषि वचन कह राऊ) । मुनि अस कृपा न कीन्हिउ काऊ
केहि कारन आगमन तुम्हारा । कहहु सो करत न लावउँ वारा

विश्वा०—

असुर समूह सतावहिं मोही । मै जाचन आयउँ नृप तोही
अनुज समेत देहु रघुनाथा । निसिचर वध मैं होव सनाथा

देहु भूप मन: हरषित तजहु मोह अग्यान
धर्म सुजस प्रभु तुम्ह कौं इन्ह कहँ अति कल्यान

(सुनि राजा अति अप्रिय वानी । हृदय कम्प मुख दुति कुम्हलानी)

दशरथ०—

चौथे पन आयउँ सुत चारी । विप्र वचन नहिं कहेहु विचारी
मॉगहु भूमि धेनु धन कोसा । सर्वस देउँ आज सहरोसा
देह प्रान तें प्रिय कछु नाहीं । सोउ मुनि देउँ निमिप एक मॉही
सव सुत प्रिय मोहिं राम की नाईं । राम देत नहिं बनइ गोसाईं
कहँ निसिचर अति घोर कठोरा । कहँ सुन्दर सुत परम किसोरा
(सुनि नृप गिरा प्रेमरस सानी । हृदय हरष माना मुनि ग्यानी)
तव वशिष्ठ बहुविधि समुझावा । नृप संदेह नास कहँ पावा

आनि आदर दोउ तनय बोलाए। हृदयँ लाइ बहु भाँति सिखाए
मेरे प्राननाथ सुत दोऊ। तुम्ह मुनि पिता आन नहि कोऊ

सौंपे भूप रिसिहिं सुत बहुविधि देइ असीस
जननी भवन गए प्रभु चले नाइ पद सीस

दोनों सम्वादों की तुलना करने से स्पष्ट हो जाता है कि केशव के सम्वाद में तर्क है, तुलसी के संवाद में पितृ-हृदय। इसी कारण केशव का सवाद शुष्क है, तुलसी का सवाद रस से छलकता हुआ पात्र है। केशव के दशरथ विश्वामित्र से प्रणबद्ध हो जाते हैं, अतः जब ऋषि—

"सत्य न एक तजौ हरिचंद है"

की दुहाई देते हैं, तब राजा चक्कर में पड़ जाते। वशिष्ठ उन्हें इस परिस्थिति से उबारते हैं। परन्तु तुलसी के संवाद में भीरु पिता का चित्रण है। भीरुता का कारण है पितृवत्सलता। उनका दुख यही है—

कहँ निसिचर अति घोर कठोरा। कहँ सुन्दर सुत परम किसोरा

केशव के विश्वामित्र जहाँ पौराणिक क्रोधी विश्वामित्र है, वहाँ तुलसी के विश्वामित्र रामभक्त है, यद्यपि प्रच्छन्न। इसीलिए तो

सुनि नृप गिरा प्रेम रस सानी। हृदय हरष माना मुनि ज्ञानी

यहाँ वशिष्ठ क्रोधी कवि के डर से राजा को नहीं समझाते। इस प्रकार प्रसंग में रामभक्ति एवं वत्सलरस की योजना कर तुलसी ने अपने सम्वाद को जो मधुरता दी है वह केशव के सम्वाद में जरा भी नहीं है।

केशव का हनुमान-रावण-संवाद व्यङ्ग और वाग्वैदग्ध्य का सुन्दर उदाहरण है—

रावण—रे कपि कौन तू
हनु०— अक्ष को घातक दूत बली रघुनन्दनजू को
रावण—को रघुनन्दन रे

हनु०— त्रिशिरा खर दूषण—दूषण भूषण भू कं

रावण—सागर कैसे तर्यो

हनु०— जस गोपद

रावण— काज कहा ?

हनु०— सिय चोरहि देखो

रावण—कैसे बधायो ?

हनु०— जु सुन्दरि तेरी छुई दृग सोवत पातक लेखं

सारा सम्वाद इस एक मत्तगयंद सवैया मे है। इतने संक्षेप इसे रखने के कारण क्लिष्टता आनी स्वाभाविक थी। परन्तु केशव तो प्रसादपूर्ण कथन जानते ही नहीं। इस छन्द मे युक्ति-पूर्वक राम के महात्म्य, रूप और वल का तथा रामभक्त के आचरण का वर्णन करते हैं। राम का वल कैसा है—हज़ारों की सेना को एक पल मे मार सकते हैं। महात्म्य कैसा है—उनके सेवक अक्षय (अमर) को भी मार सकते है। रूप कैसा है—सारे संसार का भूषण है। रामसेवक संसार कैसे तरते हैं—जैसे गोपद। रामसेवक काम क्या करते है—केवल राम-सम्बन्धी कार्य। इस कथन में राजभक्तों के आचरण की कितनी सुन्दर व्याख्या है—"तू वंदी क्यो हुआ रे।" हनुमान कहते हैं—तेरी स्त्री को सोते हुए देख लिया। इसी पाप से बन्दी होना पड़ा। व्यंग्य है कि रामभक्त परस्त्री को आँख से देखने को भी पाप समझते है और उसके दण्ड को योग्य जानते है। साधारण पाठक की समझ में यह व्यंजना नहीं आ सकती। इस प्रकार की उक्ति "सूझ" का ही विषय है, वह मस्तिष्क की उपज है हृदय की नहीं। सारे सम्वाद मे न कोई रस है न कोई हृदयग्राही बात ही कही गई है। "गागर मे सागर" भरने के प्रयत्न मे गागर भी खाली ही रह गई है।

तुलसीदास के हनुमान-रावण-सम्वाद में लोग कई प्रकार की टियाँ बताते हैं :

१—उसमे काफी गाली-गलौज है। हनुमान और रावण दोनों ठ', महाअभिमानी, अधम, मूढ़ आदि गालियों का प्रयोग करते । जान पड़ता है दो गँवार लड़ रहे हैं, राजसभा नहीं है।

२—हनुमान-रावण का (जो शत्रु है) राम के परब्रह्म रूप के सम्बन्ध में एक बड़ा प्रवचन है जो उनके दूतत्व की ष्टि से असंगत और अवांछनीय है। जैसे इस प्रकार की उक्ति

रामचरन पंकज उर धरहू। लंका अछत राज तुम्ह करहू

जिसमें हनुमान भक्ति का उपदेश दे रहे हैं परन्तु तुलसी ने सारी रामकथा में (सम्वादों में भी) रामभक्ति की व्याप्ति तो कर ही दी है। यह चाहे उनकी कमजोरी हो, परन्तु भक्ति-काव्य की दृष्टि से यही उनका बल भी कहा जा सकता है। उन्होंने अपने सम्वाद पर स्वयं सूत्रबद्ध आलोचना लिख दी है—

भक्ति विवेक विरति नय सानी

परन्तु जहाँ तुलसी में ये सब त्रुटियाँ हैं, वहाँ कम-से-कम उनका गन्तव्य तो सध जाता है। रामभक्ति का एक सुन्दर उपदेश तो मिलता है। तुलसी का लक्ष्य भी तो यही है। केशव के सम्वाद में वाक्-चातुरी के सिवा और क्या है! हो सकता है कि राजदरबार में इस प्रकार के कूट-सम्वाद चलते हों परन्तु इससे किसी भी काव्य को गौरव नहीं मिल सकता। केशव को व्यङ्ग प्रिय है। वह सरलार्थ की ओर जाते ही नहीं। इस कारण उनकी कल्पना शब्द-जाल को ही पंखों से बाँध कर उड़ने लगती है और हास्यास्पद हो जाती है।

इससे भी कहीं उत्कृष्ट सम्वाद अंगद-रावण-सम्वाद कहा जाता है जो १६वें प्रकाश का विषय है। वास्तव में जो लोग

केशव के सम्वादों की प्रशंसा करते हैं, उनका आधार यही होता है। यहाँ कवि ने भूमिका मे ही लिखा है—

यह वर्णन है षोड़शे केशवदास प्रकाश
रावण अंगद सों विविध शोभित वचनविलास

यह "वचनविलास" ही यहाँ ध्येय है। इसे सम्वाद के कई गुण बताये जाते है—

(१) इसमें भावी की सूचना दी गई है जैसे—

लंकनायक को ? विभीषण देवदूषण को दहै
मोहि जीवित होहि क्यो ? जग तोहि जीवित को कहै

रावण पूछता है कि किस लंकनायक का दूत तुमने अपने को बताया। वह लङ्कनायक कौन है? हनुमान कहते हैं—वह विभीषण है। जो शत्रुओं के हृदय को जलाता है। व्यंग्य है कि तुमसे शत्रुता है तुम्हें भी जलायेगा। अङ्गद का यह कथन नितांत सत्य हुआ, क्योंकि रावण की दाह क्रिया विभीषण ने ही की। रावण पूछता है—मेरे जीते जी वह लंकनायक कैसे होगा ? अङ्गद कहता है—संसार में तुझे जीवित कौन कहेगा (अर्थात् तू तो मृतक ही है—यह व्यङ्ग है। परन्तु इस प्रकार कथासूत्र के आगामी अंशों का प्रच्छन्न प्रकाश चाहे जिस दृष्टि से श्लाघ्य हो, वह सम्वाद को अनैसर्गिक बना देता है। कम-से-कम, वह कोई ऐसी चीज़ नहीं जो काव्यकला की दृष्टि से परखी जा सके।

(२) इस संवाद मे रावण अंगद को अपनी ओर तोड़ लेने की भरसक चेष्टा करता है, जैसे—

नील सुखेन हनू उनके नल और सबै कपि पुंज तिहारे
आठहु आठ दिसा बलि दै अपनो पहुलै पितु जालति मारे
तोसे सपूतहि जाय कै बोलि अपूतन की पदवी पग धारे
अंगद संग लै मेरो सबै दल आजुहिं क्यों न हतौ वपु मारे

है अंगद, नील, सुखेन, हनुमान और नल चार ही वीर तो उनके पक्षपाती है और समस्त कपि-सेना तो तेरी ही है। अतः आठों को आठो ओर बलिदान करके तू अपने बाप को मारने का बदला ले। तुझना सपूत पैदा करके बालि निपुत्रो की-सी गति को प्राप्त हो (धिक्कार है तुझे !)। अरे अंगद, यदि तू डरता है तो ले। मेरी समग्र सेना को ले जाकर आज ही अपने बाप के हत्यारे को क्यों नही मारता।)

अंगद कहता है—

शत्रु सम मित्र हम चित्त पहिचानही
दूतविधि नून कबहूँ न उर आनहीं
आप मुख देखि अभिलाष अभिलाषहू
राखि भुज सीस तव और कहँ राखहु

हे रावण हम अपने शत्रु, मित्र और उदासीन लोगों को अपने मन में अच्छी तरह समझते है। तुम्हारी इस नवीन भेद-नीति को मै स्वीकार नही करता। अपना मुँह देख कर तब राम को मारने की अभिलाषा करो, पहले अपने सिरों और भुजाओं की रक्षा कर लो, तब और की रक्षा करना।"

रावण फिर भी हतोत्साह नही होता, शायद अंतिम समय में अंगद पितृघाती के प्रति कठोर हो जाय, एक प्रयत्न और न कर लिया जाय। वह कहता है—

मेरी बड़ी भूल कहा कहौ रे
तेरो कह्यो दूत सबै सहौ रे
वै जो सबै चाहत तोहि मारयो
मारो कहा तोहिं जो दैव मारयो

[illegible] राम-सुग्रीवादि तो तुझे मुझसे मरवाना ही चाहते हैं, इसी [illegible] तुझे दूत बनाकर यहाँ भेजा है कि मेरे हाथों से मारा जाय। [illegible] मैं तुझे क्या मारूँ, तुझे तो दैव ने ही मार रखा है

(शत्रुओं के बीच में रहता है, तो किसी-न-किसी दिन अव
मारा जायगा)

परन्तु अंगद अब भी राम के पक्ष में दृढ़ हैं और राव
हताश होकर उससे इस विषय में बात करना ही छोड़ देता है।

तुलसीदास के रावण-अंगद-संवाद में एक बार फिर रा
को मनुष्य मानने वाले रावण को गुरु-उपदेश दिलाया गया
और उनके परब्रह्म, सर्वभक्षी, सर्व-समर्थ रूप से परिचि
कराया गया है—भक्तिकाव्य की दृष्टि से यह सब श्लाघ्य है
परन्तु शेष प्रसंगो को बहुत कुछ केशव से समानता है, जैसे

रावण—कौन के सुत
अंगद— बालि के
रावण— वह कौन बालि न जानियै
अंगद—कांख चापि तुम्हैं जो सागर सात न्हात बखानियै
रावण—है कहाँ वह
अंगद— देवलोक
रावण—क्यों गयो ?
अङ्गद— रघुनाथ-बान-विमान बैठि सिधाइ

तुलसी ने भी सम्वाद के प्रारम्भिक भाग को इसी प्रकार रख
है—

रावण—कहु निज नाम जनक कर भाई।
अङ्गद—अंगद नाम बालि कर बेटा। तासों कबहुँ भ
ही भेटा।
रावण— × × × रहा बालि बानर मै जाना
अंगद ताहिं बालिकर बालक। उपजेउ बंस अनलकुल घार

यहाँ तक दोनों कवि हनुमन्नाटक के संवादों को ही लेकर च
रहे, परन्तु बाद को दोनों की प्रवृत्तियों और भिन्न-भिन्न लक्ष्य
कारण भेद हो जाता है। रामचरितमानस भक्ति-काव्य है, अ

[illegible]सी आगे अंगद से रामभक्ति का उपदेश दिलाते है और राम अवतारत्व की प्रतिष्ठा कराना चाहते है। उनका लक्ष्य इन शब्दों स्पष्ट है

राम मनुज कत रे शठ बङ्गा। धन्वी कामु नदी पुनि गङ्गा
पसु सुर धेनु कल्पतरु रूखा। अन्नदान अरु रस पीयूषा
वैनतेय खग अगिरुह मानन। चिंतामनि पुनि उपल दसानन
सुनु मति मरे लोक बैकुण्ठा। लाभ कि रघुपति भगति अकुंठा

[illegible]रन्तु केशव केवल चमत्कार तक ही रह जाते है। उनका लक्ष्य [illegible] नहीं है, अत. राजदरबार के ज्ञान से मंडित होने पर भी [illegible]नके सम्वाद तुलसी की होड़ नहीं कर सकते। तुलसी के [illegible]सम्वादों का एक लक्ष्य है, एक ध्येय है, केशव के सम्वाद स्वयं-[illegible] निष्ठ है, उनकी सार्थकता वे ही हैं। अंगद और रावण उनके काव्य में पैंतरे बदलकर ही रह जाते हैं। कहीं-कहीं स्पष्ट ही अलंकार लक्ष्य है जैसे रावण की इस व्याज-स्तुति में

डरै गाय विप्रै अनाथै जो भाजै
परद्रव्य छोड़ै परस्त्रीहि लाजै
परद्रोह जासों न होवै रती को
सो कैसे लरै वेष कीन्हो यती को

(जो गाय और ब्राह्मण से डरता है, अनाथ को देखकर भागता है, परद्रव्य ग्रहण नहीं करता, जिससे एक रत्ती भर भी परद्रोह नहीं हो सकता, वह यती वेषधारी राम मुझसे क्या लड़ सकता है ?)

[illegible] सम्वाद में, केशव के काव्य के दो अंग ऐसे है जिनमे उनकी [illegible] सन्तुष्ट होती है—सम्वाद और वर्णन। इन्हे सजाने के लिए [illegible]होंने विभिन्न वाग्वैदग्ध्य और काव्य-कौशल का सहारा लिया [illegible] अनुप्रास, यमक श्लेष—ये उनके आगे इस प्रकार हाथ बाँधे

खड़े रहते हैं जैसे उनके रावण के आगे ब्रह्मा, कुबेर, सूर्य, नारद औ
और इंद्र। इनमें उन्होंने अपने सारे अध्ययन और लोक-निरी
क्षण का भार रख दिया है। इन सम्वादों का "कलापक्ष अत्यं
प्रबल है। उनकी (केशव की) बुद्धि प्रखर है और दरबारी हो
के कारण वाग्वैदग्ध्य ऊँचे दरजे का है। रामचंद्रिका सुन्दर औ
सजीव वार्तालापों से भरी है। व्यंजनाएँ कई स्थान पर ब
अच्छी हुई हैं।" (आचार्य कवि केशवदास—श्री पीताम्बरद
बड़थ्वाल)

परन्तु इन "सुन्दर और सजीव" वर्तालापो में हृदय दूर
नहीं है, और व्यंजना को पूर्णतः समझने के लिए मस्तिष्क
बड़ा बल देना होता है।

तुलसीदास और केशवदास दोनों के सामने दो संस्कृत ना
थे, प्रसन्नराघव और हनुमन्नाटक। दोनो अपने सम्वादों के
इनके ऋणी हैं। परन्तु तुलसी के सम्वादों पर हनुमन्नाटक
अधिक प्रभाव है, केशव के सम्वादों पर हनुमन्नाटक का प्र
कम है, प्रसन्नराघव का अधिक है। केशव के अधिकांश सम्
मे जो वक्रता और व्यंजना पाई जाती है वह प्रसन्नराघव की
है। हनुमन्नाटक पर काव्यतत्त्व, ध्वनि और व्यंजना की इ
गहरी छाप नहीं है, जितनी प्रसन्नराघव पर, अतः उसके अनुक
में केशव में भी विषय-प्रगल्भता और प्रसाद गुण के स्थान
यही विशेतपा आ गई है।

दूसरी बात यह है कि तुलसी मूल के अधिकांश स्थानो
परिवर्द्धित एवं परिवर्तित कर देते हैं। सरलता और सरसत
ओर उनका आग्रह विशेष है, परन्तु केशव मूल भाव का अ
ही करते हैं। और कभी-कभी असफल अनुवाद से ही संतुष
जाते है। वे अपने स्फुट छन्दों के प्रयोग के कारण उस प्रका

संदर्भ भी स्थापित नहीं कर पाते जैसा तुलसी दोहा-चौपाइयों के प्रवाहमय काव्य में। एक-दो उदाहरणों से यह बात ठीक रूप से समझ में आ जायगी। हनुमन्नाटक में अंगद-रावण-सम्वाद का आरम्भ इस प्रकार है—

> कस्त्वं वालितनूद्भवो रघुपतेर्दूतः सः वालीति कः
> कोवा वानर राघवः समुचिता ते वालिनो विस्मृतिः
> त्वां बध्वा चतुरम्बराशिषु परिभ्राम्यन्मुहूर्तेन यः
> सध्यामर्चयति स्म निस्त्रप कथं तावत्त्वया विस्मृतः

इसे केशव ने इस प्रकार रखा है—

> कौन के सुत ? बालि के, वह कौन बालि न जानिए ?
> काँख चाँपि तुम्हें जो सागर सात न्हात बखानिए
> है कहाँ वह ? वीर अङ्गद देवलोक बताइयो
> क्यों गयो ? रघुनाथ-बान-विमान बैठि सिधाइयो

जरा इसकी तुलना तुलसीदास की इन पंक्तियों से कीजिये हम थोड़ा उद्धृत कर सकेंगे। यहाँ कवि ने मूल का संकेत ही ग्रहण किया है। अंगद कहता है—

> अङ्गद नाम बालिकर बेटा। तासो कबहुँ भई ही भेटा

इस पर रावण

> अङ्गद वचन सुनत सकुचाना

इस तरह सारे प्रसंग की व्यंजना हो जाती है। इसके बाद भी वे [illegible] 'रामचन्द्रिका' के कवि की भाँति कवित्वहीन ढंग से मृत्यु को [illegible] नहीं देते। यह सम्भव नहीं है कि रावण के दूतों ने [illegible] राम की प्रगति और उनके द्वारा बालि की हत्या की बात न [illegible]। अतः यहाँ सतर्कता से काम लेकर तुलसी इतना ही

रावण—अब कहु कुसल वालि कहँ अहई
अंगद हँसकर कहते हैं—

दिन दस गए वालि पहँ जाई । पूछेउ कुसल सखा उर लाई
राम विरोध कुसल जनि होई । सो सब तोहि सुनाइहि सोई

इस प्रकार के परिवर्तन में काव्यत्व की तो रक्षा हुई ही है संव
का रूप भी निखर गया है ।

तुलसी यह भी जानते हैं कि कब मौनसाधन अधिक श्रेयस
होगा, कब वाचाल होना ठीक होगा । अपनी रचना में उन्
प्राकृतकला के दृष्टिकोण को भी सामने रखा है, इसी से प्रस
राघव का जनक स्वयंवर-सभा में रावण-वाण प्रसंग उन्होंने
अपनाया । इससे कलापक्ष को हानि नहीं हुई, नहीं तो यह
स्थापित हो जाता कि रावण सीतावरण मे असफल रहा इसी
उसे राम से स्वभावतः चिढ़ थी और वह सीता का प्रच्छ
प्रेमी था । परन्तु इस सूत्र को विकसित किए बिना ही केशवदास
ने रावण-सम्वाद को रामचन्द्रिका के चौथे प्रकाश मे स्थान दिया
है । यहाँ उन्होंने केवल इतना परिवर्तन किया है कि प्रसन्नराघव
के नूपुरक और मंजीरक को सुमति-विमति कर दिया है । वास्तव
मे सारे प्रसंग को किंचित भी परिवर्तन किए बिना वहीं से उठा
लिया गया है । तुलसीदास इस प्रसंग से पूर्णतः परिचित थे।
उन्होंने इसकी कुछ सामग्री का अन्यथा उपयोग किया है, जैसे

वाणस्य वाहु शिखरैः परिपीड्यमानं
भेदं धनुश्चलति किंचितमीन्दुमौलेः
कामातुरस्य वचसामिव संवधिनै
रम्यर्थितं प्रकृति चारुमनः सतीमाम्

यहाँ वाण के सम्बन्ध मे दी गई उपमा को तुलसीदास ने सभी
राजाओं पर आरोपित किया है, जैसे

भूप सहसदस एकहि बारा। लगे उठावन टरइ न टारा
डिगइ न संभु सरासन कैसे। कामी वचन सती मनु जैसे

परन्तु सारी सामग्री को कलापरिधि के बाहर जाती देख तुलसी ने इसका पूरा-पूरा उपयोग अवांछनीय समझा। प्रसन्नराघव के परशुराम रूप-वर्णन का एक तुलनात्मक अध्ययन कर इस प्रसंग को समाप्त करेंगे। प्रसन्नराघव में है—

मौर्वीधनुस्तनुरियं च विभर्ति मौञ्जीं
बाणाः कशाश्च विलसन्ति करेसिताग्रः
धारोज्ज्वलः परशुरेषं कमण्डलुश्च
तद्वीरशान्तरसयोः किमयं विकारः।

इसे रामचन्द्रिका में यों ही चार पंक्तियों में अनुवादित रख दिया है—

कुश मुद्रिका समिधैं श्रुवा कुस और कमण्डल को लिए
कटिमूल श्रोननि तर्कसी भृगुलाल-सी दरसै हिए
धनुबान तिक्त कुठार 'केशव' मेखला मृगचर्म स्यों
रघुवीरं को यह देखिये रस वीर सात्विक धर्म ज्यों

देखिये, इसे ही तुलसी कितने परिवर्तन एवं परिवर्द्धन के साथ उपस्थित कर रहे हैं—

गौर सरीर भूति भल भ्राजा। भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा
सीस जटा ससि बदनु सुहावा। रिसबस कछुक अरुन होइ आवा
भृकुटी कुटिल नयन रिस राते। सहजेहुँ चितवत मनहुँ रिसाते
बृषभकंध उर बाहु बिसाला। चारु जनेउ माल मृगछाला
कटि मुनि बसन तून दुइ बाँधे। धनु सर कर कुठारु कल काँधे

सांत बेषु करनी कठिन बरनि न जाइ सरूप
धरि मुनितनु जनु बीररसु आयउ जहँ सब भूप

यहाँ तुलसी और केशव मे जितना भेद है, वही भेद सम्वादों के उस अंश में भी है जो संस्कृत नाटक-ग्रंथों से लिये गये हैं।

सच तो यह है कि काव्य के अन्य स्थलों की अपेक्षा सम्वाद मे कवि की अभिरुचि और उसके व्यक्तित्व का अच्छा प्रकाशन होता है। केशव के सम्वादों के पीछे एक पण्डित राजकवि का वाग्वैदग्ध छिपा हुआ है, उनमें अहंता की मात्रा भी कम नहीं है, यद्यपि उनके पात्र शिष्टाचार की क्षीण ओट मे इसे छिपाने का प्रयत्न करते है। तुलसी प्रकृत कवि हैं, भक्त है, सज्जन है, वक्रोक्ति और व्यंग उन्हें पग-पग पर नहीं सूझते, वे अपने पात्रों के सम्वादों को उस प्रकार व्यक्तित्व और वाग्चातुर्य प्रदान नहीं कर सके, जैसा केशव ने किया है। इसी से उनके सम्वाद रंगमच के उपयोग के नहीं है। उन्होंने सारी कथा और राम की तरफ के (नहीं, विरोधी दल के भी) सारे पात्रों मे रामभक्ति का स्थापना कर भक्ति का सिर ऊँचा उठाया है, परन्तु उसका फल यह हुआ है उनके सम्वाद उपदेशात्मक हो गये है और सम्वाद का उपदेश हो जाना उसकी सब से बड़ी हानि है।

८—रामचन्द्रिका में वर्णन

रामचन्द्रिका वर्णनो से भरी पड़ी है। ऐसा जान पड़ता है कि केशवदास को वर्णन-लेखन से अत्यन्त मोह था। यद्यपि राम-कथा मे वर्णनो को काफी गुञ्जाइश है और वाल्मीकि एवं तुलसी-दास ने अच्छे-अच्छे वर्णन स्थान-स्थान पर लिखे है, परन्तु वर्णनों की इतनी प्रचुरता के लिए जो रामचन्द्रिका मे है, केशव के पास कोई उत्तर नहीं है। महाकाव्य में वर्णनों का विशेष स्थान होता है और साहित्य-दर्पण की महाकाव्य की परिभाषा—

'सर्गबद्धो महाकाव्यः, इत्यादि

मे कितने ही प्रकार के वर्णनो का आदेश है। परन्तु केशवदास इतने ही वर्णनों से प्रसन्न नहीं है। उन्होंने अनेक नवीन-नवीन

वर्णनों को खोज निकाला है जिससे रामचन्द्रिका "महाकाव्य" की अपेक्षा वर्णनों का एक कोष ही हो गया है। नीचे हम रामचन्द्रिका के वर्णनों की 'प्रकाश' क्रम से सूची देते है—

प्रकाश १, सरयू-वर्णन, हाथी-वर्णन, बाग-वर्णन, अवधपुरी-वर्णन

—२, राजा दशरथ-वर्णन

—३, वन-वर्णन

—४, मुनि आश्रम-वर्णन

—५, स्वयंवर-वर्णन, सूर्योदय वर्णन, राम का सूर्योदय-रूपक।

प्रकाश ६, बरात का आगमन वर्णन, शिष्टाचार रीति, जेवनार-वर्णन, पहकाचार-वर्णन, राम नखशिख-वर्णन, सीता-स्वरूप-वर्णन

प्रकाश ८, अवध-वर्णन

—९, पुत्र-धर्म-वर्णन, नारि-धर्म-वर्णन, विधवा-धर्म-वर्णन, वनगमन-वर्णन, सीता-मुख-वर्णन

—११, पञ्चवटी-वन-वर्णन, दण्डक-वर्णन, गोदावरी-वर्णन, सीता राम-त्राम-वर्णन

—१२, राम-वियोग-प्रलाप, पम्पासर-वर्णन

—१३, वर्षा-वर्णन, शरद-वर्णन

—१४. समुद्र-वर्णन

—१५, शत्रु-सेना वर्णन

—१७, १८. १९ युद्ध-वर्णन

—२०. त्रिवेणी-वर्णन. भरद्वाज वर्णन. ऋषि-आश्रम-वर्णन

—२१. दानविधान-वर्णन. सनाढ्योत्पत्ति-वर्णन

—२२ अवध प्रदेश वर्णन

—२३. राज्य-श्री-निन्दा

—२४, रामविरक्ति और दुःखों का वर्णन।

—२५, जीवोद्धार यतन वर्णन।

—२८, रामराज्य वर्णन।

—२९, चौगान-वर्णन, अवध-वर्णन, शयनागार-वर्णन, राजमहल-वर्णन।

—३०, रंगमहल-वर्णन, संगीत-नृत्यवर्णन, प्रभात-वर्णन, जागरण-वर्णन, प्रातः-वर्णन, भोजन-वर्णन, वसन्त-वर्णन, चन्द्र वर्णन (पूर्णिमा)

—३१, सीता की दासियों का वर्णन (नखशिख)

—३२, बागवर्णन, कृत्रिम पर्वत, कृत्रिम सरिता और कृत्रिम जलाशय-वर्णन, जलाशय-वर्णन, जलकेलि-वर्णन

—३५, अश्वमेध वर्णन

—३६, राजनीति धर्म-वर्णन

इन वर्णनों में से अधिकांश भूमि-भूषण-वर्णन (कविप्रिया-सातवाँ प्रकाश) और राज्यश्री भूषण-वर्णन (कविप्रिया आठवाँ प्रकाश के अन्तर्गत आ जाते हैं। शेष का सम्बन्ध शृंगार, धर्म-नीति और राजनीति से है। पिछले दो के सम्बन्ध में हम देख सकते हैं कि केशव ने कविप्रिया की मान्यताओं को कहाँ तक अपनाया है। शृङ्गार के अन्तर्गत जो वर्णन आते हैं वे हैं राम-नखशिख-वर्णन, सीता-स्वरूप-वर्णन, सीता-मुख-वर्णन (प्रकाश, १२, १३), हनुमान द्वारा राम का विरह वर्णन, मुद्रिका, सीता की वियोग-दशा आदि, दासियों का शृङ्गार (प्रकाश ३१)। इसके अतिरिक्त प्रकाश ११ के छं० २८—३८ संयोग-शृङ्गार के वर्णन के अन्तर्गत आ सकते है। धर्मनीति-सम्बन्धी-वर्णन हैं—पुत्रधर्म, नारिधर्म, विधवाधर्म, दयाविधान, रामविरक्त और दुखों का वर्णन एव जीवोद्धार रामनाम-महात्म्य। राज-नीति सम्बन्धी केवल दो ही स्थल है राजभक्ति-निंदा और राज-

नीति-वर्णन। शृंगार-सम्बन्धी वर्णनो में विशेष रसिकप्रिया की मान्यताओ को लेकर ही चल रहे है। धर्मनीति और राजनीति मौलिक है, परन्तु विशेष महत्वपूर्ण नहीं। संख्या और विस्तार मे ये वर्णन बहुत कम है। अतः स्पष्ट है कि रामचंद्रिका को हम महाकाव्य के मापदण्ड पर नहीं नाप सकते। उसे हमे केशव की अपनी काव्य-सम्बन्धी मान्यताओ के मापदड पर ही नापना होगा जो कविप्रिया और रसिकप्रिया का विषय है।

नीचे हम कविप्रिया की कुछ मान्यताओ और रामन्द्रिका से तुलना करेंगे—

(१) सीता-वर्णन के सम्बन्ध मे 'कविप्रिया' का मत है—

जल पर हय गय जलज तट महाकुण्ड मुनिवास
स्नान दान पावन नहीं बरनिय केशवदास
(सातवाँ प्रकाश, २८)

परन्तु रामचद्रिका के अन्तर्गत सरजू-वर्णन इस प्रकार है—

अति निपट कुटिल गति यदपि आप
तनु दत्त शुद्धगत छुवत आप
कछु आपुन अघ अधगति चलति
फल पतितन कहँ ऊरध फलति
मदमत्त यदपि मातङ्ग सङ्ग
अति तदपि पतित पावन तरङ्ग
बहु न्हाय न्हाय जेहि जल सनेह
सब जत स्वर्ग सूकर सदेह

यहाँ कवि का स्पष्ट लक्ष्य है विरोधाभास अलंकार, जिसके लिये उसे श्लेष का प्रयोग करना पड़ा है।

राजवर्णन के सम्बन्ध मे कविप्रिया कहती है—

मत्त, महाउत हाथ में, मंदचलनि, चलकर्ण
मक्तामय, इस कुम्भ शुभ सुन्दर, शूर, सुवर्ण
(प्रभाव ८, छं० २७)

रामचन्द्रिका में—

जहँ तहँ महा मदमत्त
वर वारन वार न दलदत्त
अङ्ग अङ्ग चरचे अति चंदन
मुंडन मुरके देखिय वंदन

यहाँ यमक का आग्रह स्पष्ट है

वारन = हाथ

वारन = वार + न = देर नहीं लगती

दीह दीह-दिग्गज की केशव मनहुँ कुमार
दीन्हे राजा दशरथहिं दिग्पालन उपहार

यहाँ उत्प्रेक्षा लक्ष्य है।

(३) नगर-वर्णन के लिए कविप्रिया में यह सिद्धांत है—

खाई, कोट, अटा, ध्वजा, वापी, कूप, तड़ाग
वरनारि, असती, सती, वरनहु नगर सभाग
(प्रभाव ७, छंद ४)

रामचन्द्रिका का नगर-वर्णन दूसरे ही प्रकार है—

ऊँचे अवास
बहु ध्वज प्रकास
सोभा विलास
सोभै प्रकास
अति सुन्दर अति साधु
फिर न रहत पल आधु

परम तपोमय मानि
दंड धारिणी जानि

शुभ द्रोण गिरिगण शिखर ऊपर उदति ओषधि सी गनौ
बहु वायु वश वारिद बहोरहि अरुझि दामिनि दुति मनो
अति किधौं रुचिर प्रताप पावक प्रगट सुरपुर को चली
रत किधौं सरित सुदेश मेरी करी दिवि खेलत भली

स्पष्ट है कि केशव अपने ही सिद्धान्तों पर नहीं चल रहे। वास्तव में काव्यशास्त्र-ज्ञान एक बात है, कवि की अभिरुचि दूसरी बात है। केशव की अभिरुचि ही उनकी कविता को रूप देती है, काव्य-शास्त्र के सिद्धांत नहीं। वर्णन में उन्होने अलंकारों का विशेष प्रयोग किया है—ये अलंकार हैं—१ उत्प्रेक्षा, २ श्लेष, ३ विरोधाभास, ४ सदेह, ५ परिसख्या। 'स्वभावोक्ति' बहुत कम है। वास्तव में वर्णन का गुण तो स्वभावोक्ति है अर्थात् जैसा प्रत्यक्ष हो, वैसा ही वर्णित हो। केशव तो प्रस्तुत के ऊपर अप्रस्तुत का कुछ इस प्रकार आरोप करते है कि प्रस्तुत का रूप ढक ही नहीं जाता, बिगड़ भी जाता है।

प्रकृति-वर्णन के सम्बन्ध मे हम अलग विचार कर रहे हैं। यहा अन्य वर्णनो को ही लेते है। इनमे प्रमुख है राम का नख-शिख वर्णन (छठा प्रकाश), सीता-मुख-वर्णन (नवॉ प्रकाश), अवध-प्रवेश (आठवॉ प्रकाश), मुद्रिका-वर्णन (१३वॉ प्रकाश), अग्निप्रवेश (२०वॉ प्रकाश), शिखनख (३१वॉ प्रकाश)। इन उत्कृष्ट वर्णनो का ही हम विश्लेषण करेंगे।

केशव का अवध-प्रवेश-वर्णन इस प्रकार है—

ऊँची बहुवर्ण पताक लसै। मानो पुरदीपति सी दरसै
[illegible] व्योम विमान लसै। सोंने तिनको सुख अञ्चल मों

× × ×

मत्त, महाउत हाथ मे, मंदचलनि, चलकर्ण
भक्तामय, इस कुम्भ शुभ सुन्दर, शूर, सुवर्ण
(प्रभाव ८, छं० २७)

रामचन्द्रिका में—

जहँ तहँ महा मदमत्त
वर वारन वार न दलदत्त
अङ्ग अङ्ग चरचे अति चंदन
मुंडन मुरके देखिय वंदन

यहाँ यमक का आग्रह स्पष्ट है

बारन = हाथ

वारन = बार + न = देर नहीं लगती

दीह दीह-दिग्गज की केशव मनहुँ कुमार
दीन्हे राजा दशरथहिं दिग्पालन उपहार

यहाँ उत्प्रेक्षा लक्ष्य है।

(३) नगर-वर्णन के लिए कविप्रिया में यह सिद्धांत है—

खाई, कोट, अटा, ध्वजा, वापी, कूप, तड़ाग
बरनारि, असती, मती, बरनहु नगर सभाग
(प्रभाव ७, छंद ४)

रामचन्द्रिका का नगर-वर्णन दूसरे ही प्रकार है—

ऊँचे अवास
बहु ध्वज प्रकास
सोभा विलास
सोभै प्रकास
अति सुन्दर अति साधु
फिर न रहत पल आधु

परम तपोमय मानि
दंड धारिणी जानि

शुभ द्रोण गिरिगण शिखर ऊपर उदति ओषधि सी गनौ
बहु वायु वश वारिद बहोरहि अरुझि दामिनि दुति मनो
अति किधौ रुचिर प्रताप पावक प्रगट सुरपुर को चली
यह किधौं सरित सुदेश मेरी करी दिवि खेलत भली

स्पष्ट है कि केशव अपने ही सिद्धान्तो पर नहीं चल रहे। वास्तव मे काव्यशास्त्र-ज्ञान एक बात है, कवि की अभिरुचि दूसरी बात है। केशव की अभिरुचि ही उनकी कविता को रूप देती है, काव्य-शास्त्र के सिद्धांत नहीं। वर्णन मे उन्होने अलंकारों का विशेष प्रयोग किया है—ये अलंकार हैं—१ उत्प्रेक्षा, २ श्लेष, ३ विरोधाभास, ४ संदेह, ५ परिसंख्या। 'स्वभावोक्ति' बहुत कम है। वास्तव मे वर्णन का गुण तो स्वभावोक्ति है अर्थात् जैसा प्रत्यक्ष हो, वैसा ही वर्णित हो। केशव तो प्रस्तुत के ऊपर अप्रस्तुत का कुछ इस प्रकार आरोप करते है कि प्रस्तुत का रूप ढक ही नहीं जाता, बिगड़ भी जाता है।

प्रकृति-वर्णन के सम्बन्ध में हम अलग विचार कर रहे हैं। यहाँ अन्य वर्णनो को ही लेते है। इनमे प्रमुख है राम का नख-शिख वर्णन (छठा प्रकाश), सीता-मुख-वर्णन (नवाँ प्रकाश), अवध-प्रवेश (आठवाँ प्रकाश), मुद्रिका-वर्णन (१३वाँ प्रकाश), अग्निप्रवेश (२०वाँ प्रकाश), शिखनख (३१वाँ प्रकाश)। इन उत्कृष्ट वर्णनो का ही हम विश्लेषण करेंगे।

केशव का अवध-प्रवेश-वर्णन इस प्रकार है—

ऊँची बहुवर्ण पताक लसै। मानो पुरदीपति सी दरसै
देवीगण व्योम विमान लसै। सोभै तिनको मुख अंचल सों

× × ×

अति सुभ वीथी रज परिहरे। मलयज लीनी पुहपन धरे
दुहु दिसि दीसैं सुवरन भये। कलस बिराजे मनिमय नये
घर-घर घंटन के रव बाजें। बिच बिच शंख जु झालें साजें
परह पखाउज। आउझ सोहैं। मिलि सहनाइन सों मन मोहैं

× × ×

भोर भये गज पर चढ़े श्री रघुनाथ विचारि
तिनहिं देखि वरनत सबै नगर नागरी नारि
तमपुंज लियो गहि भानु मनौ। गिरि अंजन ऊपर सोम मनौ
मनमत्थ विराजत सौम तरे। जनु भासत दानहि लोभ धरे
आनद प्रकासी सब पुरवासी करत हैं दौरादौरी
आरती उतारैं सरवसु वारैं अपनी २ पौरी
पढ़ि मंत्र अशेषनि कर अभिषेकनि आशिष दै सविशेसै
कुंकुम करपूरनि गजमद चूरनि वर्षित वर्षा वैसे

ऐसे वर्णनो में राजैश्वर्य ही विशेष रूप से प्रगट है। इससे कि का विशेष परिचय था। परन्तु यहाँ भी वस्तुचित्र देने की अपेक्ष उत्प्रेक्षामाला ही गूँथी गई है। मुद्रिका-वर्णन और अग्नि-प्रवेश में सन्देह और परिसख्या की शृङ्खला बॉधी गई है। वास्तव मे वर्णन करते समय केशव की कल्पना अत्यन्त उत्तेजित और असम्भव हो जाती है—वे अनोखे अप्रस्तुत उत्पन्न करते है, नहीं, उनकी झड़ी बॉध देते है। ऊपर हमने केशव का अवध-प्रवेश-वर्णन दिया है। उसे तुलसी के इस उदाहरण के सामने रखिये—

हने निसान पनव बरबाजे। भेरी सङ्ख धुनि हय गय गाजे
झाझि बिरव डिंडिमी सुहाई। सरस राग बाजहि सहनाई
पुरजन आवत अकनि बराता। मुदित सकल पुलकावलि गाता
निज निज सुन्दर सदन सँवारे। हाट बाट चौहट पुर द्वारे
गली सकल अरगजाँ सिचाई। जहँ तहँ चौकै चारु पुराई
बना बजारु न जाइ बखाना। तोरन केतु पताक बिताना

सकल पूगदल करहि रसाला । रोवे वकुल कदम्ब तमाला
लगे सुभग तरु परसत धरनी । मनिमय आलबाल कल करनी
विविध भाँति मङ्गल कलस गृह गृह रचे सँवारि
सुर ब्रह्मादि रिझाहि सब रघुबर पुरी निहारि

भूप भवन तेहि अवसर सोहा । रचना देखि मदन मनु मोहा
मङ्गल सगुन मनोहर ताई । रिधि सिधि सुख सम्पदा सुहाई
जनु उछाह सब सहज सुहाए । तनु धरि धरि दसरथ गृह छाए

— — —

मोद प्रमोद विवस सब माता । चलहिं न चरन सिथिल भए गाता
रामदरस हित अति अनुरागी । परिछनि साजु सजन सब लागी
विविध विधान बाजने बाजे । मगल मुदित सुमित्रा साजे
हरद दूब दधि पल्लव फूला । पान पूगफल मंगल मूला
अच्छत अंकुर लोचन लाजा । मञ्जुल मंडवी तुलसि विराजा
छुइ पुरए घट सहज सुहाए । मदन सकुन जनु नीड बनाए

— — —

कनकथाल भरि मंगलन्हि कमल करन्हि लिस मात
चलीं मुदित परिछनि करन पुलक पल्लवित गात
(बालकाड, ३४३-३४७)

राव मे दुलहा राम के सौन्दर्य का चित्रण इस प्रकार किया —"श्री रघुनाथ जी के सिर पर गंगाजल की पगड़ी है।[१] नकी भौंहे सिञ्चित, टेढ़ी, सुन्दर, निर्मल, सचिक्कण तथा उचित ार बराबर लम्बाई को लम्बी-चौड़ी हैं।[२] उनके कानों में मकरा-ति कुण्डल है।[३] उनके मुख की शोभा एक अत्यन्त निर्मल

१ गङ्गाजल की पाग सिर सोहत श्री रघुनाथ
२ वक्र भृकुटि कुटिल सुदेश । अति अमल सुमिल सुदेश
३ श्रवण मकर-कुण्डल

अति सुभ वीथी रज परिहरे। मलयज लीनी पुहपन धरे
दुहु दिसि दीसैं सुबरन भये। कलस विराजै मनिमय नये
घर-घर घंटन के रव बाजैं। बिच बिच शंख जु झालैं साजैं
परह पखाउज। आउझ सोहैं। मिलि महनाइन सों मन मोहैं

× × ×

भोर भये गज पर चढ़े श्री रघुनाथ विचारि
तिनहिं देखि बरनत सबै नगर नागरी नारि
तमपुंज लियो गहि भानु मनौ। गिरि अंजन ऊपर सोम मनौ
मनमत्थ विराजत सौम तरे। जनु भासत दानहि लोम धरे
आनद प्रकासी सब पुरवासी करत हैं दौरादौरी
आरती उतारैं सरवसु वारैं अपनी २ पौरी
पढ़ि मंत्र अशेषनि कर अभिषेकनि आशिष दै सविशेसै
कुंकुम करपूरनि गजमद चूरनि वर्षित वर्षा वैसे

ऐसे वर्णनों में राजैश्वर्य ही विशेष रूप से प्रगट है। इससे कवि का विशेष परिचय था। परन्तु यहाँ भी वस्तुचित्र देने की अपेक्षा उत्प्रेक्षामाला ही गूँथी गई है। मुद्रिका-वर्णन और अग्नि-प्रवेश में सन्देह और परिसंख्या की शृङ्खला बाँधी गई है। वास्तव में वर्णन करते समय केशव की कल्पना अत्यन्त उत्तेजित और असम्भव हो जाती है—वे अनोखे अप्रस्तुत उत्पन्न करते है, नहीं, उनकी झड़ी बाँध देते है। ऊपर हमने केशव का ।अवध-प्रवेश-वर्णन दिया है। उसे तुलसी के इस उदाहरण के सामने रखिये—

हने निसान पनव बरबाजे। भेरी सङ्ख धुनि हय गय गाजे
झाझि बिरव डिंडिमी सुहाई। सरस राग बाजहि सहनाई
पुरजन आवत अकनि बराता। मुदित सकल पुलकावलि गाता
निज निज सुन्दर सदन सँवारे। हाट बाट चौदह पुर द्वारे
गली सकल अरगजाँ सिंचाई। जहँ तहँ चौकै चारु पुराई
बना बजारु न जाइ बखाना। तोरन केतु पताक बिताना

सकल पूगदल करहि रसाला । रोवे वकुल कदम्ब तमाला
लगे सुभग तरु पपसत धरनी । मनिमय आलबाल कल करनी

विविध भाँति मङ्गल कलस गृह गृह रचे सँवारि
सुर ब्रह्मादि रिझाहि सब रघुबर पुरी निहारि

भूप भवन तेहिं अवसर सोहा । रचना देखि मदन मनु मोहा
मङ्गल सगुन मनोहर ताई । रिधि सिधि सुख सम्पदा सुहाई
जनु उछाह सब सहज सुहाए । तनु धरि धरि दसरथ गृह छाए

— — —

मोद प्रमोद विवस सब माता । चलहिं न चरन सिथिल भए गाता
रामदरस हित अति अनुरागी । परिछनि साजु सजन सब लागी
विविध विधान बाजने बाजे । मंगल मुदित सुमित्रा साजे
हरद दूब दधि पल्लव फूला । पान पूगफल मंगल मूला
अच्छत अंकुर लोचन लाजा । मञ्जुल मंडवी तुलसि विराजा
छुट पुरए घट सहज सुहाए । मदन सकुन जनु नीड बनाए

— — —

कनकथाल भरि मंगलन्हि कमल करन्हि लिस मात
चलीं मुदित परिछनि करन पुलक पल्लवित गात

(बालकाड, ३४३-३४७)

केशव ने दुलहा राम के सौन्दर्य का चित्रण इस प्रकार किया है—"श्री रघुनाथ जी के सिर पर गंगाजल की पगड़ी है।[१] उनकी भौंहें सिञ्चित, टेढ़ी, सुन्दर, निर्मल, सचिक्कण तथा उचित और बराबर लम्बाई की लम्बी-चौड़ी हैं।[२] उनके कानों में मकराकृति कुण्डल हैं।[३] उनके मुख की शोभा एक अत्यन्त निर्मल

१ गङ्गाजल की पाग सिर सोहत श्री रघुनाथ
२ कछु भृकुटि कुटिल सुवेश । अति अमल सुमिल सुदेश
३ श्रवण मकर-कुण्डल

पुष्करणी है।[४] और दातों की कांति उज्ज्वल शोभा देती है।[५] उनका गला शंखाकृति का है।[६] उनकी भुजाएँ देखकर देवता और असुरगण दोनों को लज्जा आती है।[७] उनके वक्षस्थल पर भृगु-चिन्ह है।[८] वे मोतियों की दो लड़ी की माला पहरे हैं।[९] उनके पैरों में जूती है जिसपर रेशम में गुँथी हुई हीरों की अति स्वच्छ पंक्ति शोभित है।[१०]" इसके समकक्ष तुलसी का यह चित्र उपस्थित किया जा सकता है—

स्याम सरीरु सुभाय सुहावन। सोभा कोटि मनोज लजावन
जावक जुत पदकमल सुहाए। मुनि मन मधुप रहत जिन्ह छाए
कल किंकिनि कटि सूत्र मनोहर। बाहु बिसाल बिभूषन सुन्दर
पीत जनेउ महाछबि देहीं। कर मुद्रिका चोरि चित लेहीं
सोहत ब्याह साज सब साजे। उर आयत उर भूषन राजे
पिअर उपरना काखा सोती। दुहँ आचरहि लगे मनि मोती
नयन कमल कल कुण्डल काना। बदनु सकल सौन्दर्ज निधाना
सुन्दर भृकुटि मनोहर नासा। भाल तिलकु रुचिरता निवासा
सोहत मौरु मनोहर माथे। मगलमय मुकुता मनि गाथे
(बाल० ३०७)

तुलसी ने राम में देवभाव रखा है, इसलिए यहाँ "नखशिख"

४ अति बदन शोभ सरसी सुरंग।
५ सोभियति दंतरुचि शुभ्र ।
६ ग्रीवा श्री रघुनाथ की लागति कछु परवैस।
७ सोभन दीरघ बाहु बिराजत। देव सिहात अदेवन लाजत।
८ उर मे भृगुलात।
९ शोभ न मोतिन की दुलरी सुदेश।
गज मोतिन की माला की शाल।
१० श्याम दुऊ पग लाल लसै दुति यो तनकी।
प्रात अति सेत सु ही खन की अवली।

का वर्णन है, परन्तु केशव, राम को नायक मानकर चले हैं। अतः वे "शिखनख" लिख रहे हैं। तुलसी राम के जावक-जुत चरणों का वर्णन करते हुए, एकदम भक्तिभावना की ओर मुड़ते हैं—'मुनि मन मधुप रहत जिन छाये।' परन्तु राजदरबार के विवादों में परिचित केशवदास राम के पैर की जड़ाऊ रेशमी जूती में ही उलझ कर रह जाते हैं। तुलसी के सारे चित्रण में प्रेमांकन की ही प्रधानता है—"महाछवि देई", "चोरि चितु लेई", 'कटिसूत्र मनोहर'—परन्तु केशवदास इस प्रकार प्रसाद-पूर्ण वर्णन की ओर नहीं जाते। उन्होंने प्रत्येक अंग और आभूषण के साथ अत्यन्त उत्कृष्ट उपमाएँ—उत्प्रेक्षाएँ दी है, जैसे वे राम के जूती पहरे पैरो को त्रिवेणी बना देते है—

श्याम दुऊ पग लाल लसै दुति यों तलकी
मानहु सेवति जोति गिरा जमुना जल की
पारजति अति सेत दुहीरन की अवली
देवनदीकन मानहु सेवत भाँति भली

(दोनों पैरो के ऊपरी भाग तो श्याम रंग के हैं और तलवो की आभा लाल है। ऐसा मालूम होता है मानो सरस्वती की ज्योति जमुना जल की ज्योति का सेवन कर रही है—जमुना मे सरस्वती आ मिली है। रेशम मे गुँथी हुई हीरो की अति सफेद पंक्ति भी है। यह संयोग ऐसा जान पड़ता है मानो गंगाजल के कणिका भी उस संगम का सेवन भलीभाँति कर रहे है—गङ्गा भी वहाँ मौजूद है)

इसी तरह जहाँ तुलसी 'कल कुण्डल काना' कह कर ही काम निकाल लेते है, वहाँ केशवदास उत्प्रेक्षा का प्रयोग किए बिना नहीं रह सकते—श्रवण मकर कुण्डल लसत मुख सुखमा एकत्र
शशि समीप सोहत मनो श्रवण मकर नक्षत्र

उत्तराषाढ़, श्रवण और धनिष्ठा के कुछ अंश मकर राशि में पड़ते है—ऐसा मालूम होता है मानो मकर राशि के अन्तर्गत श्रवण नक्षत्र में चन्द्रमा शोभा दे रहा है। इस प्रकार की सूझ भले ही उनके 'ज्योतिषज्ञान की सूचक हो, परन्तु उससे काव्य सामान्य ज्ञान के धरातल से बहुत ऊपर उठ कर वर्ग विशेष की वस्तु हो जाता है। वास्तव मे केशव के काव्य में उत्प्रेक्षा अलंकार का इतना अधिक प्रयोग हुआ है कि उनके काव्य का एक बडा अंश साधारण ज्ञान और कल्पना वाले व्यक्ति के काम की चीज नही रह जाता। उदाहरण के लिए, भ्रकुटि-वर्णन देखिये। भ्रकुटि का गुण टेढ़ा होना है, परन्तु उसके टेढ़ेपन को लेकर इस "विरोधाभास" के गढ़ने की क्या आवश्यकता थी—

जदपि भ्रकुटि रघुनाथ की कुटिल देखियत ज्योति
तदपि सुरासुर नरन की निरखि शुद्ध गति होति

यहाँ व्यंजना यह है कि भगवान रामचन्द्र के क्रोध से भी सुर, असुर और मनुष्य सदगति को प्राप्त होते हैं—मृत्यु को वरण कर साकेत धाम जाते हैं। परन्तु चाहे बात किसी हद तक ऊँची है परन्तु साधारण मनीषा इसे शीघ्र समझ नहीं पाती। कवि को पग-पग पर उत्प्रेक्षा और विरोधाभास का आग्रह क्यो हो! क्यो न वह साधारण भाव-प्रकाशन के धरातल पर चले ? तुलसी मे साधारण ज्ञान के सहारे काव्य को उठाने की कोशिश की गई है इसीसे वह तीन शताब्दियों से जनता का हृदय हार है। केशव पंडितो तक ही सीमित है। वह भी रसलाभ के लिए नहीं, पांडित्य-परीक्षा के लिए। कहा भी है—

जाकौ देन न चहै बिदाई
पूछै केशव की कविताई

केशव के वर्णनो मे एक दोष यह भी है कि कवि कहीं भी संयत नहीं है। जहाँ उसे संयम से काम लेना ही श्रेयस्कर होता,

यहाँ भी वह उत्प्रेक्षाओं की झड़ी लगा देता है। यह नहीं देखता कि इस बेमोके के चमत्कार से सहज सौन्दर्य या मनोविज्ञान की हानि होगी। अवसर सीता के अग्निप्रवेश का है। साधारण दृष्टि में यह अवसर अत्यन्त कारुणिक है। सीता ने क्या क्या दुख नहीं उठाये, फिर भी उन पर संदेह किया जा रहा है। सारी वानरसेना और लक्ष्मण के लिए यह दुःख और शोक का अवसर है। तुलसी ने इस बात को पहचाना है और अत्यन्त संक्षेप में इस दुःखपूर्ण परीक्षा का वर्णन किया है—

पावक प्रबल देखि वैदेही। हृदय हरष नहिं भय कछु तेही
जौं मन बच क्रम भय उर नाहीं। तजि रघुबीर आन गति नाहीं
तौ कृसानु सब कर गति जाना। मोकहुँ होउ श्रीखंड समाना
श्रीखंड सम पावक प्रवेस कियो सुमिरि प्रभु मैथिली
जय कोसलेस महेस वंदित चरन अति रति निर्मली

× × ×

धरि रूप पावक पानि गहि श्री सत्यश्रुति जग विदित जो
जिमि छीर सागर इन्दिरा रामहिं समर्पी आनि सो (लंका० १०९)

परन्तु केशव अग्नि में बैठी हुई सीता को देखकर उत्प्रेक्षाओं की झड़ी बाँध देते हैं—

पिता अंक ज्यों कन्यका शुभ्र गीता
लसै अग्नि के अंक त्यों शुद्ध सीता
महादेव के नेत्र की पुत्रिका सी
कि संग्राम के भूमि में चद्रिका सी
मनो रत्न सिंहासनास्था सची है
किधौं रागिनी राग पूरी रची है
गिरापूर में हौ पयो देवता सी
किधौं कञ्ज की मंजु शोभा प्रकाशी
किधौं बह्म ही में सिफाकंद मोहै
किधौं पद्म के कोष पद्म विमोहै

कि सिदूर शैलाग्र में सिद्ध कन्या। किधौ पद्मिनी सूर संयुक्त धन्या
सरोजासना है मनो चारु वाणी। जपा पुष्य के वीच वैठी भवानी
किधौ ओषधी वृन्द मे रोहिणी सी। कि दिग्दाह मे देखिये भोगिनी सी
धरा पुत्र ज्यो स्वर्ण माला प्रकासे। किधौं ज्योति सी तक्षका योग भासै
आसावरी माणिकलुम्भ सोभै। अशोक-लग्ना वन देवता सी
पलाशमाला कुसुमावलि मध्ये। वसंत लक्ष्मी सुभ लक्षणा सी
आरक्तपत्रा सुभ चित्र पुत्री। मनो विराजै अति चारुपेका
सपूर्ण सिंदूर प्रभा वसै धौ। गणेश भालस्थल चंद्र रेखा

है मणिदर्पण मे प्रतिविंव कि प्रीति हिये अनहद अमीता
पुञ्ज प्रताप में कीरति सी तव तेजन में मनु सिद्ध विनीता
ज्यों रघुनाथ तिहारिय भक्ति लसै उर केशव के शुभ गीता
त्यों अवलोकिय आनँदकंद हुतासन मध्य सवासन सीता
(प्रकाश, २०)

यह उपमाओं-उत्प्रेक्षाओं कि झड़ी इस प्रकार है—

१—जैसे पिता की गोद में कोई पवित्राचारिणी कन्या हो
२—महादेव के नेत्र की पुतली
३—रणभूमि की चंडी
४—रत्न-सिहासन मे बैठी हुई इंद्राणी
५—अनुराग से रँगी हुई कोई रागिनी
६—सरस्वती के जलसमूह में कोई देवी
७—सरस्वती के जल मे खिला कमल
८—कमल मे कमलकंद
९—कमल के वीजकोष पर लक्ष्मीजी
१०—सिदूर शैली से अग्रभाग में बैठी कोई सिद्ध कन्या
११—सूर्यमंडल मे कमलिनी
१२—कमल पर वैठी सरस्वती

१३—जपा पुष्पों पर बैठी भवानी
१४—दिव्यौषधियो के समूह मे रोहिणी
१५—पित्रदाह में कोई योगिनी
१६—मंगल-मण्डल मे स्वर्ण माला
१७—तक्षक के फण पर मणि-ज्योति
१८—जैसे आसावरी रागिनी मानिक का कुम्भ लिए हो
१९—अशोक वृक्ष पर कोई वनदेवी बैठी हो
२०—वसंत श्री पलाशकुसुम के समूह में सुशोभित हो
२१—कोई चित्रपुतली बेलबूटों के मध्य सुन्दर ढङ्ग से सजाई गई हो
२२—सिंदूर की प्रभा मे गणेश जी के मलक पर चन्द्रकला
२३—मणि दर्पण मे किसी का प्रतिबिंब
२४—किसी निश्चल अनुरागी के हृदय की साक्षात् प्रीति
२५—प्रताप के ढेर मे कीर्ति
२६—तपतेज मे उत्तमा सिद्धि
२७—केशव के हृदय मे रामभक्ति

इस उत्प्रेक्षा-माला से तो यही जान पड़ता है कि केशव के हृदय में रामभक्ति को किंचित मात्रा भी नहीं है, वे पांडित्य-प्रदर्शन में लगे हुए हैं और ऊहात्मक कल्पना-चित्रों का चलचित्र सामने उपस्थित कर रहे हैं। किसी भी चित्र को पूर्ण रूप से विकसित नहीं होने दिया जाता—एक रंग उतरने नहीं पाता कि दूसरा रंग चढ़ जाता है। इस प्रकार के काव्यकौशल से काव्यांश की हानि हुई है, वृद्धि नहीं। वास्तव में यही असंयम केशव की कला का महान् दोष है। महान कवि रसपूर्ण स्थलों और मनोवैज्ञानिक अवसरों को भली भांति जानते हैं और ऐसे ही अवसरों पर रसोद्रेक या सौन्दर्य-स्थापन या मनोवैज्ञानिक चित्र उपस्थित करने के लिए अलंकार का प्रयोग करते है। यहाँ तो अलंकार

ही लक्ष्य हो गये हैं—कवि पाठकों को चकित, चमत्कृत कर देना चाहता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि केशव के काव्य में वर्णनों की भरमार है, परन्तु मूल रूप से सब एक ही प्रकार के है। सब में उनके पांडित्य की छाप है। सब में उत्प्रेक्षा, विरोधाभ्यास, परिसंख्या आदि अलंकार के लिए उनका आग्रह है। वर्णनों मे उन्होने रस का जरा भी सम्बन्ध नहीं रखा है, यद्यपि उनसे उनका लोकनिरीक्षण भी प्रगट होता है, परन्तु प्रधानरूप से तो वे ऊहा-कवि के रूप मे ही हमारे सामने आते हैं। तुलसी के सारे रामचरितमानस में केवल एक स्थान पर (दे० चन्द्रोदयवर्णन, लंका कांड) हम ऊहाप्रधान उत्प्रेक्षा-मूलक काव्य को पाते हैं। केशव के पास इसके सिवा और है ही क्या ?

इन वर्णनो में अधिकांश ऐसे हैं जिनका परिचय केशव को अपने आश्रयदाता के वातावरण और उनकी संगति से हुआ होगा, जैसे चौगान, प्रकाश ३२ के समस्त वर्णन (बाग कृत्रिम पर्वत, कृत्रिम सरिता, कृत्रिम जलाशय, जलकेलि)। केशव ने राम के ऐश्वर्य को ओरछा राजमहल के ऐश्वर्य पर खड़ा किया है। अतः इन स्थलो पर उनके काव्य का मूल रूप ही हमे मिलता है। रामकथा मे इन वर्णनो की कोई आवश्यकता ही नहीं थी। सच तो यह है कि कथाकाव्य में वर्णन और कथा मे एक विशेष अनुपात होना चाहिये। वह अनुपात केशव की रामचन्द्रिका मे है ही नही। वहाँ रामकथा तो बीसवें प्रकाश तक ही चलती है और वर्णन उनतालीस प्रकाश तक चलते है। इन पहले २० प्रकाशों मे भी कथा का अनुपात पाँचवें भाग तक भी नहीं पहुँचता अधिकांश विस्तार सम्वाद और वर्णन मे ही समाप्त हो जाता है

(९) रामचन्द्रिका में धर्मनीति

रामचन्द्रिका के २४, २५ वें प्रकाशों में धर्म और अध्यात्

[क]ा वर्णन है। इसके अतिरिक्त २१, २६, २७, ३३ और ३४वें [प्र]काश से केशव की धर्म-सम्बन्धी धारणा का निर्माण हो [स]कता है।

चौवीसवे-पच्चीसवें प्रकाश मे रामविरक्ति और विश्वामित्र [के] प्रवोध मे जीव के दुःखो और उनके परिहार का विस्तृत वर्णन [है]। केशव की सम्मति मे यह संसार ही दुःखमय है, जन्म और [म]रण दुःखमय है, निरन्तर जीवन-साधन भी कष्टमय है। [ब]चपन, जवानी और वृद्धावस्था तीनो मे दुःख है—

× × जग महँ सुक्ख न गुनिये
मरणहिं जीव न तजहीं। मरि मरि जन्म न भजहीं
उदरनि जीव परत हैं। वहु दुख सों निकरत हैं
अतहु पीर अनत ही। तन उपचार सहित ही
पोच भली न कछु त्रिय जानै। लै सव वस्तन आनन आनै
शैशव ते कछु होत बड़ेई। खेलत हैं ते अयान चढ़ेई
है पितु मातन ते दुख भारे। श्रीगुरु तें अति होत दुखारे
भूख न प्यास न नींद न जोवै। खेलन को वहु भॉतिन रोवै
जारति चित्त चिता दुचिताई। दीह त्वचा अहि कोप चवाई
काल समुद्र झकोरनि झूल्यो। यौवन चोर महामद भूल्यो
धूम से नीलनि चोलनि सोहै। जाइ छुई न विलोकत मोहै
पावक पापशिखा वड़ वारी। जारत है नर को नरनारी
पंक हिये न प्रभा सॅसरी सी। कर्दम काम कछू परसी सी
कामिनि काम की डोरि प्रसी सी। मीन मनुष्यन की वनसी सी

खैंचत लोभ दसों दिसि को, गहि मोह महा इत फॉसहि डारे
ऊॅचे ते गर्व गिरावत, क्रोधहु जीवहि छूटर लावत भारे
ऐसे मे कोट की खाज ज्यो केशव, मारत कामहु वाण निवारे
मारत पांच करे पॅचकूटहिं, कासो कहैं जगजीव विचारे

कँपे उर वनि डगे वर डीठि, त्वचाइति कुचै सुकचै मति वेली
नवै नव ग्रीव थकै गति केशव, बालक ते संगही संग खेली
हिये सब आधिन व्याधिन संग, जहा जब आवै ज्वराकी महेली
भगै सब देह दशा, जिय साथ, रहै दुरि दौरि दुराशि अकेली

(इस संसार मे कोई भी सुख नहीं है। यहाँ जीवों का जन्म-मरण ही नहीं छूटता। जीव गर्भ में आते हैं और बड़े कष्ट से उस गर्भ के बाहर होते हैं। तब शरीर-सम्बन्धी व्यवहारों में पड़कर अन्त मे अनेक कष्ट सहते हैं। बचपन में जीव भली-बुरी वस्तु को नहीं जानता, सब वस्तुएँ मुख में डाल लेता है। कुछ बड़ा होते ही अज्ञानवश केवल खेल में ही लगा रहता है। पिता-माता और गुरु से अनेक दुःख पाता है। भूख, घाम और नींद को कुछ नहीं गिनता, केवल खेल के लिए रोता है। धुएँ के समान नीलांबर से सुशोभित परनारी-रूपी अग्नि पाप की बड़ी-बड़ी लपटें वाली होने के कारण युवावस्था में नर को जलाया करती है, लोक-मर्यादा के कारण उसे छू नहीं सकते। पर वह देखने से ही मूर्च्छित कर देती है। स्त्रियों के हृदय की कुटिलता ही वंशी के समान है, उनके हृदय की गुप्त कामेच्छा ही उस हँसिया में लगा हुआ मांस का चारा है और स्त्री का समस्त शरीर ही डोरी के समान है जिसे कामदेव शिकारी अपने हाथ से पकड़े हुए है। इसलिए स्त्री मनुष्य-रूपी मीनो को फँसाने के लिए पूर्णतयः वंशी के समान है। इधर महामोह की फाँसी लगाए लोभ देव मनुष्य को दशों दिशाएँ में खेंचता है। गर्व उसे ऊँची पदवी से गिरा देता है और क्रोध उसे जलाता है। फिर कोढ़ की खाज की तरह कामदेव के बाण उसे पीड़ित करते है। लुटेरे काम, क्रोध, लोभ, मोह, गर्व उसे मारते है, तो जीव इस दुःख को किससे कहे ? वृद्धावस्था में हृदय से कंठ मे आती हुई वाणी काँपने लगती है, दृष्टि भी डगमगा जाती है, शरीर की त्वचा ढीली पड़कर सिकुड़ जाती

है और बुद्धि-रूपी लता भी संकुचित हो जाती है। गरदन झुकने लगती है। चलने की शक्ति जाती रहती है। जरा के अंगो की स्वाभाविक शक्ति मारी जाती है, जीने की दुराशा मात्र शेष रह जाती है।)

दुःख के कुछ विशेष कारण भी है—

१—स्त्री

२—अहंकार

३—लोभ

४—पापाचरण

५—तृष्णा

६—समय की प्रबलता के कारण शुभ विचार नष्ट हो जाते और मनुष्य नाश की ओर दौड़ता है। जीव इन दुःखो मे फँसा है, उसका उद्धार कैसे हो? वशिष्ठ इस प्रकार उपदेश करते हैं—

(१) जीव ब्रह्म का ही प्रतिबिंब है। लोभ, मद, मोह, काम के वश में होकर अपना सत्यरूप भूल जाता है। उसे वेदविधि ढूंढना चाहिये और यत्नपूर्वक शास्त्र-सम्मत व्यवहार करे। राम के पूछने पर कि जीवन की दुराशा उसे स्वभावतः चक्कर देती रहती है, जीव क्या करे? वशिष्ठ बताते हैं, कि वासना दो प्रकार की होती है—शुभ, अशुभ। मनुष्य यत्न के साथ वासना को शुभ पंथ में लगावे, तो अपना ब्रह्म-पद पा सकता है (कर्मवाद)

(२) मुक्ति प्राप्त करने के ४ साधन है—साधु-संग, शम, संतोष, विचार। साधु वह है जो संसार मे रहता हुआ भी निर्दोष है। शम का अर्थ है—विषय-वस्तु के सौन्दर्य को देखते हुए, बहुत समय तक स्पर्श करते हुए, बात करते हुए और सुनते हुए तथा भोग करते हुए भी किसी समय, किसी प्रकार उन विषयो

मे लीन न हो (इद्रियों को गुण और कर्मों में निर्लेपता)। मंतो का अर्थ है सच्चा अनासक्तिभाव । मन में किसी वस्तु की अभिलापा न हो, किसी वस्तु के मिलने पर सुखी और नष्ट होने पर दुखी न हो, मन को परमानन्द-स्वरूप-ईश्वर में लगाये रखे। विचार का अर्थ है—सत्यज्ञान, मै कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, वहाँ से किस लिए आया हूँ ? जिस प्रकार अपने असली पद को प्राप्त हूँ, उसे खोजना मेरा परम धर्म है। और कौन मेरा हितू है, कौन अहितू है, इसको चित्त में भली भाँति जाने।

(ज्ञानवाद)

जीव अपने अहंवाद (या ममता) से बँधा हुआ है। इसी से वह मन, वचन और शरीर से कुत्सित कर्म करता है और अपने को उनका कर्ता मान कर दुखी होता है। वास्तव मे जीव ही ईश है। उसमे "कर्तृत्व" नहीं होना चाहिये। अहंभाव के नाश से ही मुक्ति की प्राप्ति होगी—

आपन सों अवलोकिये, सब ही युक्त अयुक्त
अहभाव मिटि जाय जो कौन वद्ध कौ मुक्त

तब उसकी स्थिति जीवन-मुक्त की होती है—

बाहर हूँ अति शुद्ध हिये हूँ। जाहि न लागत कर्म किये हूँ
बाहर मूढ़ सु अंतस मानो। ताकहँ जीवनमुक्त बखानो

जीवन-मुक्त का स्थाई भाव होता है—

जानि सबै गुण दोष न छडै। जीवनमुक्तन के पद मंडै
(त्याग

(३) परन्तु केशव भक्ति-वाद से भी अपरिचित नहीं हैं वशिष्ठ राम-भक्ति का मूल स्वरूप जानते हैं—

जग जिनको मन तव चरणलीन। तन तिनको मृत्यु न करसि छीन

ाहि छनही छन दुख छीन होत। जिय करत समित आनँद उदोत
(भक्तिवाद)

(४) वे योग को एक महत्वपूर्ण साधन मानते है—

जो चाहैं जीवन अति अनत। सो साधै प्राणायाम संत
शुभ पूरक कुम्भक मान जानि। अरु रेचकादि सुखदानि आनि
जो क्रमक्रम साधै साधु धीर। सो तुमहि मिलै याही शरीर

(योगवाद)

केशव पूजा-उपासना को भी एक स्वतन्त्र साधना के अन्तर्गत ाते है। पूजा की विधि क्या है, राम के सगुण रूप का ध्यान। रन्तु यह ध्यान किस प्रकार हो, यह कवि स्वयं शिव के मुख से हलाता है—

पूजा यहै उर आनु। निर्व्याज करिये ध्यानु
यों पूजि घटिका एक। मनु किये याज अनेक
जिय जान यहई योग। सब धर्म कर्म प्रयोग
तेहि ते यही उर लाव। मन अनत कहुं न चलाव
यह रूप पूजि प्रकास। तब भये हम से दास

(२५वा प्रकाश, ६२३-३३)

उपासक अन्य प्राकृत देवताओं को छोड़ दे, निष्कपट होकर राम का ध्यान करे, इस मानसिक अनन्य पूजा से शुभाशुभ वासनाएं ल जाती है। जीव भक्तिरस को प्राप्त कर महाकर्ता, महात्यागी, महायोगी होकर ईश्वर से लीन हो जाता है—

यहि भांति पूजा पूजि जीव जु भक्त परम कहाय
भव भक्ति रस भागीरथी महँ देइ दुखनि बहाय
पुनि महाकर्त्ता महात्यागी महायोगी होय
अति शुद्धभाव रमै रमापति पूजिहै सब कोय

० ३५-३८)

केशव के अनुसार भक्ति-साधना के लिए घर-बार छोड़ने की आवश्यकता नहीं है—

कहि केशव योग जगे हिय भीतर, बाहर भोगन स्यों तनु है
मनु हाथ सदा जिनके, तिनको वनही घरु है घरुही वनु है
(छं० ३९)

अन्त मे नाम ही एक मात्र मुक्ति का उपाय है—

कहै नाम आधो सो आधो नसावै
कहै नाम पूरो सो वैकुंठ पावै
सुधारै दुहूँ लोक को वर्ण दोऊ
हिये छद्म छोड़ै कहै वर्ण कोऊ

सुनावै सुनै साधु संगी कहावै। कहावै कहै पाप पुंजै नसावै
जपावै जपै वासना जारि डारै। तजै छद्म को देव लोकै सिधारै
(प्रकाश २६, छं० ४-११)

तुलसी ने भी इसी प्रकार कहा है —

कलि में केवल नाम अधारा

स्पष्ट है कि केशव अपने समय के सभी प्रचलित अध्यात्मवादों को स्वीकार करते हुए भी अन्त में भक्तिवाद (मानसिक पूजा, अनन्य भाव से अनुरक्ति और नाम स्मरण) को ही श्रेय देते हैं। परन्तु उनको यह सिद्धान्त आध्यात्मिक आत्मानुभव के द्वारा प्राप्त नहीं हुआ है, अतः इसमें वह बल नहीं है जो तुलसी के अध्यात्म में है। केशवदास—"प्राकृत कवि" ही रह गए हैं। रामचंद्रिका जैसी पुस्तक से अर्थसिद्धि किये बग़ैर जो न रह सके, वह प्राकृत कवि नहीं तो और क्या हैं ?—इक्कीसवें प्रकाश मे सनाढ्यों की दैवी उत्पत्ति बताकर उन्हें दान देने का नियोजन किया गया है। इसी प्रकार ३३वें प्रकाश में ब्रह्मा सनाढ्यो को दान देने की बात कहते हैं। उस पर एक नया ही प्रसंग गढ़ लिया गया है

केशव राम के उस रूप से परिचित है जिसे तुलसी उनके पहले ही स्थापित कर चुके थे—

जाके रूप न रेख गुण, जानत वेद न गाथ
रंगमहल रघुनाथ गे राजश्री के साथ
(२९वा प्रकाश, छं० ४५)

ग्रन्थ की अवतारणा और भूमिका से भी यही बात जान पड़ती है। ग्रन्थ के आरम्भ में श्रीराम-वंदना है—

पूरण पुराण अरु पुरुष पुराण परिपूरण वतावै न वतावैं और उक्ति को। दरशन देत जिन्हें दरशन समुझै, न नेति नेति कहै, वेद छाँडि आन युक्ति को॥ जानि यह केशोदास अनुदिन राम राम रटत रहत न डरत पुनरुक्ति को। रूप देहि अणिमाहि, गुण देहि गरिमाहि, भक्ति देहि महिमाहि, नाम देहि मुक्ति को।

फिर

राम नाम, सत्यधाम
और नाम कौन काम

और

सोई परब्रह्म श्रीराम हैं अवतारी अवतारमणि

वे प्रस्तावना में राम-भक्ति का संकल्प भी करते है—

रामचंद्रपद पाल, वृन्दारक वृन्दानि वंदनीयम्
केशवमति भूतनया लोचनं चचरीकायते

और ग्रन्थ की समाप्ति पर पौराणिकों की भाँति फल भी दे देते हैं—

अशेष पुन्य पाप के कलाप आपने बहाय
विदेहराज ज्यों सदेह भक्त राम को कहाय
लहै मुमुक्ति लोक लोक अंत मुक्ति होहिं ताहि
कहै सुने पढ़ै गुनै जु रामचंद्र चन्द्रकाहि

जिस प्रकार तुलसी अपनी रामकथा की परिणति में कहते है—

रघुवंसमनि भूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं
कलिमल मनोमल धोइ बिनु श्रम रामधाम सिधावहीं

परन्तु रामचरित मानस की भाँति रामचंद्रिका में भक्ति की व्याप्ति नहीं है—उसकी मात्रा, वास्तव मे, बहुत न्यून है। केशव के सामने लक्ष्य साफ है—कवित्वशक्ति और पांडित्य का प्रदर्शन। इसी कारण उनके धर्म नीति और अध्यात्म के उपदेश संदेश के रूप मे कथा मे मिल नहीं सके है। वे जिस संकल्प को लेकर चले हैं, उसकी रक्षा उनसे नहीं हो सकी है।

आध्यात्मिक विचारो पर लिखते हुए कवि की जीव, ब्रह्म, माया, संसार आदि विषयक धारणाओं पर भी विचार होता है। केशव ने इन विषयो पर विस्तारपूर्वक विचार नहीं किया है, परन्तु यहाँ-वहाँ तत्सम्बन्धी उक्तियाँ बिखरी पड़ी हैं। इन्हें ही समेट कर हम इन विषयो पर इनके विचार निर्धारित कर सकते हैं।

१—ब्रह्म

केशव के मतानुसार ब्रह्म ही एकमात्र सत्ता है, जो रामरूप मे अवतरित हुई है—

सब जानि बूझियत मोहिं राम,
सुनिए सो कहौ जग ब्रह्मनाम
जिनके अशेष प्रतिबिंब जाल
तेइ जीव जाम जग में कृपाल

हम ऊपर बता चुके है कि केशव ने राम को ब्रह्म ही माना है।

२—जीव

ऊपर उद्धृत पद से पता लगता है कि केशव जीव को ब्रह्म का प्रतिबिंब मानते है।

३—माया

केशव ने कहीं भी माया का वर्णन नहीं किया है, न माया-न्धी विचार का ही कहीं प्रकाशन किया है। जान पड़ता है, ा-सिद्धांत उन्हे मान्य नहीं है।

४—जगत (नाम-रूप)

यह नाम-रूप जगत एक समस्या है—न झूठा है, न सच्चा है। मार्थिक दृष्टि से तो यह झूठ है, परन्तु लौकिक दृष्टि से च्चा है या सच्चा लगता है—

झूठो है रे झूठो जग राम की दोहाई
काहू साँचे को कियो ताते साँचो सो लगत है

य यह जग झूठा है, तो सच्चा क्यों लगता है—केशव कहते . जो "सच्चा" है, जिसका अस्तित्व है, उसकी रचना "असत्य" हो कैसे होगी? कर्ता सत्य है, तो कर्म भी सत्य होना चाहिये। व इसे सत्य ही 'ब्रह्म' की रचना बताते हैं, परन्तु इसकी क्षण-गुरता और इसके असत्य सुखों को देखकर वे इसे सत्य भी नना नहीं चाहते। सचमुच, वे उलझन में पड़े हैं—

तुम्हरी जु रची रचना विचारि
तेहि कौन भाँति समझौं मुरारि

तुलसीदास भी कभी इस प्रकार के असमंजस्य में पड़ गये थे जब विनयपत्रिका में उन्होंने लिखा था—

माधव कहि न जाय का कहिये
देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिए

× × ×

कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल करि मानै
तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम सो आपुन पहिचानै

(१) यह 'जगत' सत्य है ।

(२) यह 'जगत' झूठ है ।

(३) यह जगत झूठ भी है, सत्य भी है ।

तुलसी को ये तीनों मत मान्य नहीं है, वह 'अनिर्वचनीयवाद' में समाप्त करते हैं—"जैसा है वैसा है, हम नहीं जान सकते कैसा है, जान भी सके तो बता तो सकते नहीं ।" केशवदास ने भी उनकी भाँति इन तीनों झंझटों से बचने का एक तर्क सोच लिया—"यह जगत झूठ है, सत्य नहीं है, परन्तु यह सच्चा-सा लगता है ।" कदाचित् वे यहाँ भी वह "प्रतिबिंबवाद" स्थापित कर रहे हैं जो उन्होंने जीव-ब्रह्म के सम्बन्ध में स्थापित किया है। प्रतिबिंब झूठ नहीं होता, परन्तु वह वास्तविक वस्तु न होकर उसका प्रतिरूप-मात्र होने के कारण झूठ ही कहा जायगा । इस प्रकार केशव द्वैतवादी नहीं ठहरते, उन्हे पूरा-पूरा अद्वैतवादी भी नहीं कह सकते, उन्हे "प्रतिबिंबवादी" कहा जा सकता है, जो सिद्धांत अद्वैतवाद के बहुत क़रीब है। इस सिद्धांत के द्वारा वे माया की मध्यस्थता के जाल से छूट गये हैं ।

केशवदास ने 'जगत' को ही 'संसार' माना है। यह 'जगत' (जग) मन के हाथ है—

जग को कारन सब मन
मन को जीत अजीत

यह सारे "प्रपञ्च" झूठ हैं, परन्तु सच लग रहे हैं—कैसे, मन के कारण न ! अद्वैतमत के मूल-प्रवर्त्तक, शंकराचार्य के गुरु-गुरु श्री गौड़पादाचार्य भी इसी तरह कहते है—

मनोदृश्यमिहं द्वैतमद्वैतं परमार्थतः
मनसो ह्यमनीभावे द्वैतं नैवोपलभ्यते ।

(यह जितना द्वैत है, मन का ही दृश्य है, परमार्थतः तो अद्वै

ते है, क्योंकि मन के गननशून्य हो जाने पर अद्वैत की उपलब्धि नहीं होती।)

१०—रामचंद्रिका में राजनीति

केशव ने अपने सामने राजाराम का दृष्टिकोण रखा है, कुछ इसलिए, कुछ उनके दरबार से संबन्धित होने के कारण रामचंद्रिका मे राजनीति का विशद वर्णन है। उसके कई रूप हैं, (१) वह राजव्यवहार और राजकीय शिष्टाचार के रूप मे प्रगट हुआ है। (२) रामराज्य के आदर्श वर्णन मे (३) स्वयं राम के व्यवहार मे। (४) रामचन्द्र के राजनीति-उपदेश से।

३६वें प्रकाश मे रामकृत राजनीति का उपदेश इस प्रकार है—

बोलिये न झूठ ईठि मूढ पै न कीजियै
दीजियै जु वस्तु हाथ भूलिहू न लीजियै
नेहु तोरिये न देहु दुःख मंत्रि मित्र को
यत्रतत्र जाहु पै पत्याहु जौ अनिज को
जुवा न खेलिये कहूँ, जुवा वेद न रच्छिये
अमित्र भूमि माहि जै अभक्ष भक्ष भक्षिये
करौ न मन्त्र मूढ सों न गूढ़ मन्त्र खोलिये
सुपुत्र होहु जै हठी मठीन न सों बोलिये
वृथा न पीड़िये प्रजादि पुत्र मान पारिये
असाधु साधु बूझि के यथापराध मारिये
कुदेवदेव नारि को न बाल वित्त लीजिये
विरोध विप्र वंश सों सु स्वप्नहू न कीजिये
परद्रव्य को तो विष प्राय लेखो
परस्त्रीन को ज्यो गुरस्त्रीन देखो
तजो काम क्रोधो महामोह लोभो
तजो गर्व को सर्वदा चित्त छोभो
करो राग्रहो निग्रहो युद्ध योद्धा। करो साधु संसर्ग जो बुद्धि बोद्धा

हितू होय जे देई जो धर्म शिक्षा । अधर्मीन को जेहु जै वाक भिक्षा

कृतघ्नी कुवाही परस्त्री विहारी
करौ विप्र लोभी न धर्माधिकारी
सदा द्रव्य संकल्प को रक्षि लीजै
द्विजातीन को आपुही दान दीजै

तेरह मंडल मंडित भूतल भूपति जो क्रम ही क्रम साधै
कैसुहुँ ताकहँ शत्रुन मित्रसु केशवदास उदास न बाधै
शत्रु समीप, परे तेहि मित्र, सुलासु परेजु उदास कै जोवै
विग्रह, सचिनि, दाननि सिन्धु लौं ले चहुं ओरनमि तो सब सोवै

राजश्री वश कैसहूँ, होहु न उर अवदात
जैसे तैसे आपु वश ताकहँ कीजै तात

(झूठ न बोलना, मूर्ख से मित्रता न करना, जो वस्तु किसी को दे देना, फिर भूल कर न लेना। किसी से स्नेह करके फिर उसे तोड़ना मत, मन्त्री और मित्र को दुख न देना। देशांतर में जाने पर शत्रु का विश्वास न करना। जुआ मत खेलना। वेद-वचन की रक्षा करना। शत्रु देश में जाकर अनजानी वस्तु न खाना। मूर्ख से सलाह मत लो और अपना गूढ़ तात्पर्य किसी पर प्रकट मत करो। हठ न करना और मठधारियों से छेड़छाड़ मत करना। वृथा प्रजा को मत सताना उसे पुत्रवत पालना। दोषी समझ कर जैसा अपराध हो, वैसा दंड देना। ब्राह्मण, देवता स्त्री और बालक का धन न लेना और ब्राह्मणवश से स्वप्न में भी विरोध न करना।

परधन को विष ही समझो। परस्त्री को मातावत् मानो। काम, क्रोध, मोह, लोभ, गर्व और चित्तक्षोभ को सदा त्यागो। यश-संग्रह करो, युद्ध में शत्रु को दमन करो। ज्ञानदाता साधुओं की संगति करो। जो धर्मयुक्त शिक्षा दे, उसे ही हितैषी समझो

और अधर्मियों से बात मत करो। कृतघ्नी, झूठे, परस्त्रीगामी तथा लोभी ब्राह्मण को दान द्रव्य के बाँटने का अधिकारी मत बनाओ। संकल्प किए हुए द्रव्य की यत्नपूर्वक रक्षा करके ब्राह्मणों को अपने हाथ से दो। जो राजा क्रमशः अपने राज्य-सहित १३ राज्यों की सुव्यवस्था कर लेता है, उसको शत्रु, मित्र वा उदासीन कोई भी हानि नहीं पहुँचा सकता। शत्रु-राज्य से युद्ध करे, मित्र राज्य से संधि करे और उदासीन राज्य से दान-नीति बरते। फिर भी किसी प्रकार राजवैभव के वश नहीं हो) इस दृष्टि से राम का राज आदर्श था यद्यपि केशव ने इस रामराज्य के वर्णन के समय श्लेष-पुष्ट-परिसंख्या और अतिशयोक्ति का सहारा लिया है, परन्तु उनका आदर्श अवश्य ही स्पष्ट है कि—

"पृथ्वी धनधान्य से पूर्ण हो, न राजा-प्रजा मे युद्ध हो, न विदेशी आक्रमण हो, गो-अश्व-हाथी तेजवान और पुष्ट हो, प्रजा क्षमतावान और उद्योगी हो, साधु और विद्या-विलासी हो। रामराज्य में सभी जन चिरजीवी हो, संयोगी हो, सदा एकपत्नी-व्रती हो, आठो भोग भोगते हो, शीलवान, गुणवान और सुन्दर रूपयुक्त शरीर वाले हो। सब जने ब्रह्म-ज्ञानी, गुणवान तथा धर्म से चलने वाले हो। प्रजा दानादि कर्म कर सके, चित्त चिंता-रहित हो, चातुर्यपूर्ण हो, एक पुत्र-पौत्रादि के सुख देखे। सब माता-पिता के भक्त हों। प्रजा ज्ञानी हो, अशोक हो, धर्मी हो, यशी हो, सुखी हो, त्रिताप से रहित हो, अननाथ न हो। कोई भिक्षुक न हो। सब ऋतुगामी हो। कोई किसी की वृत्ति हरण न करे। लोग लज्जालु हो, द्यूत-व्यसनी न हो। जहाँ व्यभिचार और परपीड़ा का नाम नहीं हो। सब सम्मान युक्त रहे। मर्यादा-पूर्वक रहे। जन-धन-सम्पन्न नगर मे लूट-खसोट नहीं हो। सर्वदा शांति का राज हो। अपवित्र कोई नहीं हो। गुण-संग्रह की ओर जनता की दृष्टि हो। सब कीर्तिवान हो।" (देखिये, प्रकाश २८)

इतना होते हुए भी राजा राज्य का उपयोग करते हुए भी, जिससे उनका मन विकृत न हो जाय। इस दृष्टिकोण को लेकर केशव ने २३वें प्रकाश में राम द्वारा राज्यश्री की निंदा कराई है (छंद १२—४०) और उपभोक्ता को सावधान किया है—

जोई अति हित की कहैं, सोई परम अमित्र
सुखवक्ता ई जानिये, एतत मंत्री मित्र ॥३८॥
सावधान है सेवै याहि। साँचो देत परमपद ताहि
जितने नृप याके वश भये। पेलि स्वर्ग मगनावहि गये

(राजश्री के प्रभाव से राजा का ऐसा स्वभाव हो जाता है जो जन परमहित की बात करता है वही परमशत्रु माना जाता है और चापलूस लोग सदा ही मन्त्री और मित्र माने जाते हैं। इसलिए सावधान होकर जो इस राजश्री का सेवक करता है उन्हें यह सच्ची मुक्ति देती है, असावधानी करनेवाले राजा नरक को प्राप्त हुए हैं।)

केशव राज-व्यवहार के बड़े मर्मज्ञ ज्ञाता थे। इसी से उन्होंने उसका बड़ा सुन्दर चित्रण किया है।

तुलसी की भाँति केशव ने भी राम-राज्य का चित्रण किया, परन्तु वे अलंकारों के विना तो बात ही नहीं कर सकते—"जिसके राज में आज कोई वर्ण संकर नही है, केवल नाममात्र का वर्णों की संकरता (रंगों का मिश्रण) चित्रों मे ही देखी जाती है। व्याह समय मे ही स्त्रियाँ कुछ अपशब्द बकती है। (अन्यथा कोई किसी को गाली नही देता)। नाममात्र को ध्वजापट ही जहाँ काँपता (अन्य कोई डर से काँपता नहो)। जहाँ रात्रि मे चक्रवाकों को ही वियोग दुःख है (अन्य को नहीं), जिस राज्य मे ब्राह्मणों और मित्रों से कोई द्वेष नहीं करता (नाममात्र को द्विजराज चन्द्रमा और मित्र सूर्य के द्वेपी केवल बादल है)। मेघ ही नगर घेर कर आकाश से बरसते हैं (अन्य कोई नगर शत्रुओं से नहीं

[ा] जाता है) अपयश ही से लोग डरते है (अन्य किसी से नहीं
[डर]ते) यश ही का सब को लोभ है (अन्य किसी बात के लोभी
[न]हीं) दुख ही का जहाँ खंडन होता है (अन्य किसी सिद्धांत का
[खं]डन नहीं) और जो राजा समस्त ससार के भूषण रूप है, ऐसे
[रा]जा राम चिरकाल तक सानंद राज करें।

(सत्ताईसवाँ प्रकाश, छद ६)

[के]शवदास ने जो बात अलकार में कही है, वही बात तुलसी ने
सहज निरलंकार भाषा उससे कहीं अधिक प्रभावशाली ढग पर
कह दी है—

रामराज बैठे त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका
बयरु न कर काहू सन कोई। रामप्रताप विषमता खोई

बरनसुभ निजनिज धरम निरत वेद पथ लोग
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राजराज नहिं काहुहि व्यापा
सब नर करहि परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती
चारिउ चरन धर्म जग माही। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं
अल्प मृतु नहि कवनिउ पीरा। सब सुन्दर सब विरुज सरीरा
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतज्ञ नहिं कपट सयानी
सब उदार सब परउपकारी। विप्र-चरन सेवक नरनारी
एक नारि व्रत रत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी

दंडत तिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज
जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचन्द्र के राज

इत्यादि

ऊपर के अवतरण से प्रगट हो जायगा कि तुलसी प्रसादपूर्ण
वाक्य से ही जो बात प्रकट कर देते है, केशव को उसके लिए

अलंकार चाहिये। सहजोक्ति की अपेक्षा वक्रोक्ति ही उन्हें अधिक पसन्द है। उनकी कल्पना भी समाज के कुछ क्षेत्रों को ही छूकर नहीं रह जाती, वे धर्म, कुटुम्ब, भौतिक सुख सभी में क्रांति देखते हैं। केशव ने चाहे यह लिखा हो कि सुखी आदर्श राज्य में शत्रु नगर को नहीं घेरते, परन्तु उससे किसी ऊँचे राजनैतिक सिद्धांत का स्थापन नहीं हो जाता। तुलसी तो सामाजिकों का ही ऐश्वर्य नहीं दिखाते, वे प्राकृतिक ऐश्वर्य में भी अतुलनीय वृद्धि दिखाकर रामराज के अलौकिक प्रभाव को व्यंजित करते हैं, जैसे

प्रगटी गिरिन्ह विविध मनिखानी। जगदातमा भूप जग जानी
सरिता सकल बहहिं बर बारी। सीतल अमल स्वाद सुखकारी
सागर निज मर्यादा रहहीं। डारहिं रतन ताहि नर लहहीं
सरसिज संकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दस दिसा विभागा
विधु महि पूर मयूखन्हि रवि तप जेतनेहि काज
माँगे बारिद देहिं जल रामचन्द्र के राज

केशव ने रावण का जो ऐश्वर्य व्यंजित किया है (देखिये अंगद प्रसंग) उससे उनका राजकीय व्यवहार-ज्ञान सिद्ध होता है, परन्तु यह बात नहीं है कि तुलसी यदि चाहते तो ऐसा राजैश्वर्य-वर्णन वे नहीं कर सकते थे। वे इस प्रसंग की ग्रामीणता के लिए लांछित हैं, परन्तु यह तो वास्तव में उनकी अतुल रामभक्ति का फल था। उन्होंने रामविमुख रावण को अपमानित करने के लिए ही इस प्रसंग में राजनैतिकता नहीं बरती।

११—तुलसीदास और केशवदास

तुलसी मूलतः भक्त-कवि थे और केशव मूलतः रसिक पंडित कवि थे। राजदरबारों से उनका सम्बन्ध था। आश्रयदाताओं की प्रशंसा करने में उनकी काव्य-प्रतिभा चमक उठती थी और उन्हीं के मनोविनोद के लिए वे लिखते थे। सुधी राजसभागण

नके श्रोता थे। श्रोतागणों मे संस्कृत का ज्ञान भी अपेक्षित था। ऐसे वातावरण में उन्होंने अपने संस्कृत के पांडित्य और कवि प्रतिभा से चमत्कार उत्पन्न किये, यह उनकी प्रतिभा का परिचायक है। वास्तव मे जिस विलासपूर्ण राज-वातावरण मे केशव रह रहे थे, उसमे रहकर इससे अच्छी कविता नहीं हो सकती थी। सच तो यह है कि प्रत्येक कवि प्रभावित होता है (१) अपने वातावरण से, (२) अपने कुटुम्ब और शिक्षा दीक्षा से, (३) अपनी अभिरुचि से और (४) अपने श्रोताओं की अभिरुचि से। कबीर, तुलसी और सूर इन सबके श्रोता अध्यात्मतत्त्व के जिज्ञासु और श्रद्धालु भक्त थे। केशव के श्रोता थे राजदरबारी विलासी पुरुष जो वारांगनाओं को गृहणियों से भी अधिक प्रीत समझते थे। दूसरा श्रोता था संस्कृतज्ञ पंडितवर्ग जिसे माघ, भारवि, बाण और श्रीहर्ष से विशेष प्रेम था। शृङ्गार-प्राण, विदग्ध सूक्तियों से महाराज को भुलाना ही उनका काम था। केशव भी इन्हीं पंडितों मे से थे। तीसरा था समान-कर्मा कवि-वर्ग। कविप्रिया और रसिकप्रिया स्पष्टतः इमारे वर्ग के लिए लिखी गई थी और रामचन्द्रिका में पग पग पर छन्द बदलने का रहस्य भी यही है। केशव ने कविता को सीखने-सिखाने का विषय बना दिया। और पहले-पहल वह शिष्य-गुरु परम्परा शुरू हुई जो आज तक सीमित क्षेत्रों में चलती है। तीसरा श्रोता उनकी प्रसिद्ध वारांगना-मित्र है जिसका केशव पर बड़ा प्रभाव था। कुटुम्ब संस्कृत पण्डितों का था जो भाषा से कविता करना तो हेय ही समझते थे, जैसे-तैसे छन्द लिखकर रसिकों को प्रसन्न करने की बात थी। वातावरण सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक प्रत्येक क्षेत्र में शिथिलता और विलासिता, उच्छृङ्खलता और अनाचार से पूर्ण था। केशव अपनी अभिरुचि के लिए प्रसिद्ध है ही। बुढ़ापे में भी उन्हें मलाल था कि उनके श्वेत केशों को देखकर

"चन्द्रमुखी मृगलोचनी बावा कहि कहि जाँय।" इन सबने को इनका विशिष्ट क्षेत्र दिया। तीन पुस्तकें राजाश्रय से .. है। दो रस और अलंकार के ग्रन्थ और एक छन्द-ग्रन्थ (राम-चन्द्रिका) उन्हे आचार्य बना देते है। रहे रामचन्द्रिका और विज्ञान गीता। वास्तव मे ये केशव के प्रतिभा-क्षेत्र के बाहर जाकर लिखी रचनाएँ हैं। विज्ञान गीता संत-काव्य की परम्परा मे आती है और रामचन्द्रिका राम-काव्य की श्रेणी में, यद्यपि शृङ्गार, पांडित्य-प्रदर्शन और आचार्यत्व वहाँ भी बड़ी मात्रा में उपस्थित है। कदाचित् तुलसी के 'मानस' की मान्यता होते देख केशव ने रामकथा पर लिखने की बात सोची, परन्तु जिन ग्रन्थों की ओर उनकी प्रतिभा सहारे के लिए झुक सकती थी (प्रसन्न-राघव और हनुमन्नाटक) वे तुलसी ने पहले ही अपना लिये थे। अतः केशवदास को इन ग्रन्थों का वही अंश लेना पड़ा जो तुलसी ने नहीं लिया था। जैसे जनक की स्वयंवर-सभा में बाण रावण। शेष के लिए उन्हे मौलिक बनना पड़ा। तुलसी ने राम कथा को कई बार कहा और रामकथा के सभी क्षेत्र खोज डाले थे। अतः केशव ने भक्तवत्सल भगवान राम की जगह महाराज रामचन्द्र को विषय बनाया। इस नवीनता के लिए धन्यवाद परन्तु तुलसी पहले ही गीतावली मे राम का यह रूप रख चुके थे। उनकी दास्य-भावना को भक्ति का आश्रय भी यही रूप था। अतः केशव ने इस महाराज-राम-रूप के भी अछूते ही अंगों को विकसित किया। सभी बातों मे मौलिक होने के प्रयत्न में वे विचित्र हो गये है। वे रामचन्द्रिका मे रामकथा भी कहेंगे, नये कवियों को छन्द लिखना भी सिखायेंगे; राम को महाराज, ब्रह्म और अवतार एक साथ बनायेगे, शृङ्गार और भक्ति की विरोधी धाराएँ एक साथ ही प्रवाहित करेंगे। यह है रामचन्द्रिका की विडंबना! केशव ने सोचा होगा कि इतने विभिन्न, असम्बद्ध,

पहलुओं से पुष्ट उनकी रामकथा तुलसी की लोकप्रियता को पीछे छोड़ जायगी, परन्तु वे इसी भ्रम मे रह गये। तुलसी की राम-कथा का जो स्थान है, वह केशव की रामचन्द्रिका को नहीं मिलेगा, न मिला ही है। आज पंडित-वर्ग मात्र मे उनकी चर्चा है और पाठ्य-पुस्तक होने की कारण उसका अध्ययन-अध्यापन हो जाता है, परन्तु साधारण जनता के भाव-क्षेत्र अथवा उसके विचार-क्षेत्र मे उसका कोई स्थान नहीं। आज न हम कविता सीखने के लिए उसे पढ़ेंगे, न रामकथा सुनने के लिए। कला की सर्वोत्कृष्ट रचना होकर भी सहज कवि-अनुभूति से स्फुरित न होने के कारण रामचन्द्रिका असफल रही। कहाँ तुलसीदास की कविता-धारा स्रोतस्विनी-सी उमड़ी पड़ती है, कहाँ पग-पग पर विलास-कटाक्ष करके ठहरने, मुड़ने, हाव-भाव दिखाने वाले केशव की रामधारा!

१२वीं शताब्दी से १५वीं शताब्दी तक रामकथा लेकर मुख्यतः ऐसे ही ग्रन्थों की रचना हुई है जिनमे कथा मे काव्य-कौशल का प्रदर्शन ही मिलता है। कहीं सम्वाद पर बल है जैसे हनुमन्नाटक और प्रसन्नराघव मे, कहीं कथा को ही विचित्र रूप से गूँथा है जैसे सेतु-बंधन और प्रसन्नराघव एवं अनर्घराघव मे। प्रसन्नराघव मे राम-सीता के पूर्वराग की नवीन कल्पना है। इस प्रकार राम-कथा पर शृंगार का आरोप हुआ और बाद के संस्कृत कवियों ने राम की मर्यादा की रक्षा का प्रयत्न नहीं किया। सुन्दर सूक्तियों, सुभाषितों, मुक्तक-काव्यों आदि से सहारा लेकर राम-कथा मे विचित्रता लाने की हास्यास्पद चेष्टा की गई। केशव इसी कड़ी मे आते है। तुलसी भी इन तीन-चार शताब्दियों के संस्कृत काव्य के प्रभाव से नहीं बचे है. प्रसन्नराघव से उन्होंने 'सीता राम का पूर्वराग' लिया है और बरवै रामायण मे सीता का शृंगार वर्णन है, एवं रामाज्ञा प्रश्न मे ज्योतिष-ग्रन्थ (मंगल)

लिखकर राम-कथा कहने की चेष्टा है। परन्तु अपने सर्वोत्तम ग्रंथ मानस मे उन्होंने राम-कथा को भक्तिरस में डुबो कर उपस्थित किया है और चन्द्र-वर्णन जैसे एकाध स्थलों को छोड़ कर ऊहा-प्रधान काव्य उन्होंने नहीं रचा। रसोद्रेक और मनो विज्ञान पर उनकी दृष्टि सदैव ही रही है। उन्होंने विवाह का सांगोपांग नवीन पक्ष ढूँढ निकला और उत्तरकांड को दर्शन और राम-भक्ति की इंद्रमणि बना दिया। परन्तु केशव की अ दृष्टि इतनी पैनी न थी, वह संस्कृत कवियों के राम ग्रन्थों चमत्कार की चौंध मे आ गये और सामान्य काव्य से हट उन्होंने प्रेत-काव्य की सृष्टि की। उसके समय के राज-कवि औ कवि-कर्मी उनके इस महान् पांडित्य से चकित होकर मुक्त से उनके प्रशंसक हुए, यह ठीक है। परन्तु रस का स्रोत समसामयिकों ने तुलसी से ही ग्रहण किया।

केवल संस्कृत के परवर्ती राम-काव्यों से ही नहीं केशव माघ, वाण, श्रीहर्ष, शूद्रक,, कालिदास और भवभूति की साम से लाभ उठाने की चेष्टा की, कहीं कहीं सफल अनुवाद ही प्रस्तु कर दिया। 'कादम्बरी' मे एक वर्णन है—

"ताल तिलक तमाल हिंताल वकुल बहुलैः एलालता कुटि नारिकेल कलपैः लोललोध्रवली लवगपल्लवैः उल्लासित चूतरेणु प अलिकुल भंकारैः उन्मद कोकिलकुलकलापकोल हामानि, इत्यादि

(कथासुख)

केशव ने इसी की हिन्दी कर दी है—

तरु तालीस तमाल ताल हिंताल मनोहर
मञ्जुल मंजुल तिलक लकुचकुल नारिकेलवर
एला ललित लवङ्ग भङ्ग पुङ्गीफल सोहै
रूपी शुककुल कलित चित्त कोकिल अति मोहै

(प्रकाश ३, छन्द १

इसी तरह शूद्रक की मृच्छकटिक में है—

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीव ञ्जनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता॥

इसे हम रामचन्द्रिका में पाते हैं—

वर्णत केशव सकल कवि विषम गाढ तम सृष्टि
कुपुरुष-सेवा ज्यों भई संतत मिथ्या दृष्टि
(प्रकाश १३, छं० २१)

यह पता लगाना दिलचस्प होगा कि केशव पर तुलसी का प्रभाव है या नहीं। हम कह चुके हैं कि केशव की कथा-वस्तु का ढाँचा वाल्मीकि पर खड़ा है और कितने ही प्रसंगों के लिये वे स्पष्ट रूप से उसी के ऋणी हैं, जैसे लक्ष्मण की आत्म-हत्या करने की ... विवाह से लौटते समय मार्ग में परशुराम का मिलना, इत्यादि दूसरे स्थान पर इस प्रभाव की विशद एवं विस्तृत विवेचना कर चुके हैं। यहाँ हमें यह बताना है कि कथा को वाल्मीकि से काम में उपस्थित करते हुए भी काव्य-प्रसंगों के लिए राम-चन्द्रिका का कवि वाल्मीकि का ऋणी नहीं है। वर्षा-शरद-वर्णन, राम का विवाह, पम्पासरोवर वर्णन, सभी में वह मौलिक है।

परन्तु दो प्रसंग ऐसे हैं जो हमारे काम में यह सन्देह उठाते हैं कि शायद केशव ने 'मानस' से उन्हें लिया हो—पूर्ववर्ती राम-कथा में उनका कोई स्थान नहीं मिला है और स्वयं केशव-राम की कल्पना उनकी ओर जा ही नहीं सकती थी। वे प्रसंग हैं।

१—राम के विवाह का विशद वर्णन
२—वन-पथ की झाँकी

यदि समीक्षात्मक रूप से अध्ययन किया जाय तो राम-चरितमानस और रामचन्द्रिका के इन दोनों प्रसंगों में बड़ा

साम्य दिखलाई देगा। यह साम्य भावना में मिलेगा, वस्
निरूपण और वर्णन में तो मौलिकता का आग्रह यहाँ भी है
जब हम देखते हैं कि यही दो तुलसी के अत्यन्त मौलिक सुन्द
अंग हैं तो इस अनुमान को ही बल देना होता है कि कम-से-क
ये प्रसंग वहीं से लिये गये हैं, यद्यपि प्रसंग-विधान स्वयं केश
का है। पलकाचार, ज्योंनार, गाली, दूलह-दुलहिन, एवं मं
की शोभा—ये बातें इसी ढंग पर तुलसी में भी हैं, परन्तु ज
तुलसी ने गालियों का निर्देश किया है, वहाँ केशव वाग्विल
में पटु हैं, अतः भूमि को वारांगना बनाकर राम पर श्लेष व्य
करते हैं। एक बात और है, इन प्रसंगों में अनायास ही रामभ
की योजना हो गई है। हो सकता है, तुलसी ही इसके लि
जिम्मेवार हों। तुलसी कहते हैं—

बैठे बरासन रामजानकि मुदित मन दशरथ भये

केशवदास का कहना है—

बैठे जराम तरे पलिका पर रामसिया सबको मन मोहैं
ज्योतिसमूह रहो मढ़िके सुर भूलि रहे बपुरौ नरको है
केशव तीनहु लोकन की अवलोकि वृथा उपमा कवि खोहैं
सोभन सूरज मण्डल त्रास बनो कमला कमलापति मोहै

इसी प्रकार बन-पथ-प्रसंग में, तुलसी की भाँति, यहाँ भी लोग
संभ्रम-वश पूछते हैं—

कौन हो कितते चले कित जात हौ केहि काम जू
कौन की दुहिता बहू कहि कौन की यह बाम जू

किधौं यह राजपुत्री वरही वरी है
किधौं उपरि बर्‍यौ है यह सोभा अभिरत है
किधौं रति रतिनाथ जस साजथ केसोदास
जात तपोवन, सिव बैर सुमिरत है

किधौ मुनि सापहत, किधौ ब्रह्म दोषरत
किधौ सिद्धियुत सिद्ध परम विरत है
किधौ कोऊ ठग हौ ठगौरी लीन्ही
किधौ तुम हरिहर श्रीहौ सिवा चाहत फिरत है

हो, प्रसंग का निर्देश अवश्य तुलसी ने किया होगा, यद्यपि की तत्सम्बन्धी रचना केशव के ऊहात्मक उक्ति-वैचित्र्य से कहीं धिक सुन्दर है।

केशव और तुलसी की रामकथा से मूल अन्तर यही है कि ाँ केशव अधिकांश स्थलो पर प्रसन्नराघव और हनुमन्नाटक अनुवाद की प्रस्तुत कर रहे है, वहो तुलसीदास इन ग्रन्थो से ाग मात्र लेते है, यही नहीं इनसे ली हुई सामग्री को काव्य र मनोविज्ञानसे पूर्णतः पुष्ट करके पाठक के सामने रखते । केशव मूल का सौन्दर्य भी समाप्त कर देते हैं—उन्हें न अनु- ाद का ध्यान रहता, न काव्यगत सौन्दर्य का, न मनोविज्ञान । वे "संस्कृत कवियो और और नाटककारो की प्रतिभा के ने नीचे दब गये हैं कि स्वयं उनका स्वरूप विकृत और उनका र अस्वस्थ हो गया है।"

३

रसिकप्रिया

केशवदास के ग्रंथों मे रसिकप्रिया सर्वश्रेष्ठ है। आचार्यत्व की दृष्टि से चाहे कविप्रिया का कितना ही महत्व रहा हो और पांडित्म की दृष्टि से रामचन्द्रिका चाहे जितनी भी स्तुत्य हो, केशव की काव्य-प्रतिभा और सहृदयता के सर्वोच्च दर्शन रसिकप्रिया मे ही होते है। जैसा अन्यत्र लिखा है, रसिकप्रिया रस-ग्रन्थ है। उसमे कवित्त-सवैयो का संग्रह है जो केवल उदाहरण रूप मे उपस्थित है। ये उदाहरण लक्षण के कितने निकट पहुँचते है, यह हम पहले देख चुके है। यहाँ हमे इन उदाहरणों के स्वरूप उपस्थित सामग्री की काव्य-परीक्षा करनी है।

रीति-ग्रन्थकारो के सम्बन्ध मे श्री रामचन्द्र शुक्ल ने सत्य ही कहा है—"इन रीति ग्रन्थो के कर्ता भावुक, सहृदय, और निपुण कवि थे। इनका उद्देश्य कविता करना था, न कि काव्यांग का शास्त्रीय पद्धति पर निरूपण करना। अतः इनके द्वारा बड़ा भारी कार्य यह हुआ कि रसो (विशेषतः शृंगार रस) और अलंकार के बहुत ही सरस उदाहरण अत्यन्त प्रचुर परिमाण मे उपस्थित हुए। ऐसे सरस और मनोहर उदाहरण संस्कृत के सारे लक्षण ग्रन्थो से चुनकर इकट्ठे करें तो भी उनकी इतनी अधिक संख्या न होगी।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २८६)। केशव के सम्बन्ध मे भी यही बात लागू है।

रसिकप्रिया के नायक है कृष्ण, राधा नायिका हैं। यद्यपि केशव ने ग्रंथारंभ मे कृष्ण मे नवरसो की स्थापना की है—

श्री वृषभानु कुमारि हेतु शृंगार रूपमय
वास हास रस हरे मात बंधन करुनामय
केशीप्रति अति रौद्र वीर मारो वत्सासुर
भय दावानल पान पियो बीभत्स बकीउर
अति अद्भुत बंच विरंचि मति शांत संतते शोच चित
कहि केशव सेवहु रसिक नवरस मे व्रजराज नित

परन्तु वे स्वयं शृंगार रस को ही लेकर रह गये और उनके इस मौलिक नवरस-स्थापन का आगे के कवियो ने भी उपयोग नहीं किया। यदि किया होता तो हिन्दी साहित्य का भडार अत्यन्त सुन्दर कवित्त और सवैयो से पूर्ण होता और रसवैभिन्न्य का अच्छा अवसर मिलता।

इसी मान्यता को लेकर केशव ने अधिकांश पदो मे स्पष्ट रूप से कान्ह, राधिका आदि शब्द रखे है और जहाँ नहीं रखे है, वहाँ भी वे व्यंग्य है। इस प्रकार सारे नायिका-भेद को राधा-कृष्ण पर घटा दिया गया है। प्रकाशो के अन्त मे वे बराबर लिखते आये है कि वे राधा-कृष्ण का शृंगार-वर्णन कर रहे है। इससे कई विशेषताएँ उनके काव्य मे आ गई हैं—

(१) निर्व्यक्तिकता—कवि को आत्म-व्यंजना नहीं करनी पड़ी। उसने सारी भावनाओं का आरोप राधा-कृष्ण पर कर दिया और वह जैसे तटस्थ खडा रहा। यद्यपि अन्त मे वह परम्परानुसार अपना नाम डाल देता है, जैसे वह यह कह रहा हो कि बात चाहे किसी की हो, मूल मे व्यक्तित्व उसका ही है, यह भुला देना ठीक नहीं होगा। रीतिकाव्य मे जो तटस्थता, परम्पराबद्धता, आत्म-व्यंजना को दबाने की प्रवृत्ति है, वह इसी कारण है कि कवि ने अपने को अपने काव्य से दूर रखा है।

(२) कृष्ण का नायक रूप—इस प्रकार के सवैयो मे कृष्ण

लौकिक नायक के स्तर पर उतर आते हैं, राधा लौकिक नायिका के। इस प्रकार रीति-काव्य में पौराणिक राधा कृष्ण और भक्ति-काव्य के राधा-कृष्ण का साधारणीकरण हो गया है। यदि हम विश्लेषण करें तो पता लगेगा कि यह साधारणीकरण की प्रवृत्ति कई शताब्दियों से चली आती थी। भागवत मे कृष्ण ब्रह्म है। राधा का उल्लेख नहीं है, परन्तु वे गोपियों के साथ प्रेम-लीलाएँ रचते है। व्यास पद-पद पर बता देते है कि यह प्रेमलीला ब्रह्म-जीव के अनन्य सम्बन्ध का रूपक है। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में गोलोकवासी की प्रेयसी के रूप में राधा भी प्रतिष्ठित है। आलिगन, परिरम्भण, संयोग आदि का स्पष्ट उल्लेख है। कृष्ण को "कामकलानिधि" कहा गया है । यद्यपि रीतिशास्त्र का सहारा नहीं लिया गया है। जयदेव के काव्य मे ब्रह्मवैवर्त्त पुराण से सूत्र लेकर कृष्ण को धीर ललित नायक के रूप में चित्रित किया गया है। यहाँ भी कृष्ण उसी रूप मे उपस्थित हैं, परन्तु कवि प्रकृति के उद्दीपन, मान, दूती, अभिसार—इनका भी सहारा लेता है। ये स्पष्टतयः शृङ्गार-शास्त्र मे मान्य है, परन्तु यहाँ यह खण्ड-काव्य के विषय बना दिये गये हैं। विद्यापति के काव्य मे कृष्ण-राधा को एकदम नायक-नायिका के रूप में खण्ड-काव्य बनाकर उपस्थित किया गया है । विद्यापति के विषय हैं—राधा-कृष्ण का पूर्वराग, मिलन, अभिसार, मान, दूती, मानमोचन, पुनर्मिलन, विरह, मानसिक मिलन। यहाँ मानसिक मिलन के आध्यात्मिक संकेत को छोड़कर शेष लौकिक प्रेम-काव्य ही है। सूरदास ने राधा-कृष्ण के प्रेम-विकास को रीति-शास्त्र के भीतर से नहीं देखा यद्यपि 'साहित्यलहरी' के पदों में अलंकार-निरूपण और नायिका-भेद का प्रयत्न है। फिर भी सूर-सागर के राधा-कृष्ण का प्रेमविकास अत्यन्त स्वाभाविक है। फिर भी शृंगार काव्यों से उन्होंने सहारा लिया है। उनके ग्रन्थ

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण और जयदेव का प्रभाव ही अधिक है। उनके पदों में आध्यात्मिक अर्थ लौकिक शृंगार से पुष्ट होता हुआ आगे बढ़ता है। परन्तु कवि ने प्रेमविकास को अत्यन्त मानवीय धरातल पर उतारा है।

केशव के काव्य में राधा कृष्ण नायक-नायिकाओं की शृंगार के अन्तर्गत सभी परिस्थितियों के भीतर से गुजरते हैं। इसका कारण यह है कि उन्हें उन पदों में आना है जो शृंगार की अनेक परि-स्थितियों के उदाहरण-स्वरूप हैं। रीति-काव्य में कृष्ण का यही रूप मान हो गया है। रीति-काव्य में भक्ति का समावेश भी है यद्यपि लक्ष्य सहृदय पाठक ही है, भक्त नहीं। दृष्टिकोण यह है—

आगे के कवि रीझिहैं तो कविताई
न तो राधा-मोहन सुमिरन को बहानो है

यह स्पष्ट है कि रीति-काव्य की इस प्रकार के कवित्त सवैयों की परम्परा केशव से ही चली। उन्होंने अत्यन्त शक्तिशाली रूप से नई रूढ़ियों का निर्माण किया है। 'रसिकप्रिया' में कवि ने प्रसादगुण को हाथ से नहीं जाने दिया है और माधुर्यवृत्ति का भी ध्यान रखा है। इससे अनेक स्थानों पर वह सुन्दर काव्य की सृष्टि कर सका है। जैसे—

आजु विराजत हैं कहि केशव श्री वृषभानु कुमारि कन्हाई
बानी विरंचि वही रस काम रची जो वरी सो वधू न बनाई
रूप विलोकि त्रिलोक में ऐसी को नारि निहारि न बार लगाई
मूरतिवंत शृंगार समीप शृंगार किये जानो सुन्दरताई

यहाँ कवि ने बानी (सरस्वती) को कामदेव के हाथों से रचाया है। यह अत्यन्त असाधारण कल्पना है। नारी-सौन्दर्य के आदर्श के लिए रति की कल्पना हुई है, वाणी की नहीं। एक दूसरा उदाहरण है—

कोमल विमल मन विमला सी सखी साथ
कमला ज्यों लीने हाथ कमल सनाल के
नूपुर की ध्वनि सुनि मोरे कलहंसन के
चौंकि चौंकि परैं चारु चेटवा मराल के
कचन के भार कुचभारनि सकुच भार
लचकि लचकि जात कटि तट बाल के
हरे हरैं बोलत विलोकत हरेई हरैं
हरैं हरैं चलत हरत मन लाल के

ऊपर के पद में 'विमल' 'विमला' 'कमला' 'कमल' आदि में अनुप्रास का आग्रह स्पष्ट है। इसी प्रकार 'कञ्चन के भार कुच भारनि सकुच भार' कहकर कवि ने अपनी नायिका को अत्यन्त ऐश्वर्यवती, सौन्दर्यवती और लज्जावती चित्रित किया है। भाषा-सौन्दर्य ने सौन्दर्य का एक मूर्त चित्र उपस्थित कर दिया है—

चौंकि चौंकि परै चारु चेटवा मराल के

वास्तव में, भक्त कवियों ने व्रजभाषा को काफी मॉज दिया था। रीति-कवियों ने उनके इस भाषा-संस्कार से काफी फायदा उठाया है। नन्ददास का एक पद है—प्यारी पग हरैं हरैं धर। केशवदास ने इस हरै शब्द का चमत्कार ही उपस्थित कर दिया है।

एक छंद में केशव ने सांगरूपक द्वारा कृष्ण के सौन्दर्य का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है—

चपला पट मोर किरीट लसै मघवा धनु शोभ बढ़ावत है
मृदु गावत आवत वेणु बजावत मित्र मयूर लजावत है
उठि देखि भटू भरि लोचन चातक चित्त की ताप बुझावत है
घनश्याम घने घन वेष धरे जुबने वनते व्रज आवत है

परन्तु अधिकांश कवित्त-सवैयों में केशव यमक का मोह नहीं छोड़ पाते—

> हरित हरित हार हेरत हियो हरत
>
> हारी हूँ हरिननैनी हरिन कहूँ लहो
>
> बनमाली ब्रज पर बरषत बनमाली
>
> बनमाली दूर दुख केशव कैसे सहो
>
> हृदय कमल नैन देखि के कमलनैन
>
> होहुँगी कमलनैनि और हो कहा कहों
>
> आप घने घनश्याम घनही ते होत घन
>
> श्याम के दिवस घनश्याम बिन क्यों रहों

स प्रकार के काव्य की तह तक पहुँचना कठिन काम है। पाठक पहली ही पौर पर दंडधारी यमक का सामना करना पड़ता है नका भेद कोप की सहायता के बिना खुल ही नहीं सकता। तब से स्त्री-अंगों के प्रति रूढ़ काव्यालंकारों का भेद जानना होता । इसके बाद ही उसे केशव की "हरिणनेत्री" नायिका के र्शन होते हैं।

कहीं-कहीं केशव कल्पना की अत्यन्त तीव्र उड़ान को रूपक में ाँध देते हैं, जैसे

> है तरुणाई तरंगिन पूर अपूरब पूरब राग रँगे पय
>
> केशवदास जलज मनोरथ संभ्रम विभ्रम भूर भरे मय
>
> तर्क तरंग तरंगित तुङ्ग तिमिंगल शूल विशाल निरंतर
>
> कान्ह कछू करुणामय है सखि तेही किए करुणा वरुणालै

सें तरुणाई को समुद्र बनाया गया है. प्रेम या काम अद्भ ...विलेच्छा का जहाज है. तर्क की तरंगों से यह जहाज टकरा रहा . हृदयवेदना रूपी तिमिंगल उसे नष्ट करने पर तुले ही हैं। ष्ण ही इस जहाज को करुणा कर पार लगाते हैं। साधारणतः स प्रकार की कल्पना भक्ति काव्य को ही विशेष शोभित करती परन्तु यहां इससे शृंगाररस की वृद्धि ही अभीष्ट हो गई है।

फिर भी ऐसी उत्प्रेक्षाएँ उच्च कवि-प्रतिभा प्रगट करती हैं। इसी कोटि की एक उत्प्रेक्षा यह है—

> वन मे वृपभानु कुमारि मुरारि रमे रुचिसों रस रूप पिये
> कहू कूजत पूसत कामकला विपरीत रची रति केलि लिये
> मणि सोहत श्याम जराइ जरी अति चौकी चलै चहु चार हिये
> मखतूल के झूल झुलावत केशव भानु मनो शशि अंक लिये

कहीं-कहीं यह कल्पना की उड़ान इतनी ऊँची और असंगत हो जाती है कि साधारण चिन्ता उसे पकड़ भी नहीं सकती, जैसे यहाँ पर—

> भाल गुही गुन लाल लटैं लपटी कर मोतिन की सुखदैनी
> ताहि विलोकत आरसी लै कर आरस सोह करुनारस नैनी
> केशव कान्ह दुरे दरसी परसी उपमा मति को अति पैनी
> सूरजमडल में शशिमंडल मध्य धॅसी जनु ताल-त्रिवेणी

इस छन्द में नायक-नाययिका की प्रतिविव-भेंट का वर्णन है। नायिका ने माला पहरी है, उसका तागा लाल रङ्ग का है, मोतियों की लर उस पर लिपटी है। वह आरसी लेकर उस हार को अपने हृदय पर तरंगित देख रही है। इतने में कृष्ण (नायक) आ गये। पीछे से छिप कर उसे देखने लगे। परन्तु नायिका की आरसी मे उनकी झाँई पड़ी और नायिका ने उन्हें पकड़ लिया। लाल गुण मे गूँथी हुई माला जैसे सूरजमण्डल है, नायिका का मुख शशिमण्डल है, कृष्ण जैसे त्रिवेनो हैं। या नायिका को वेणी माला और मुख की परछाईं के बीच आ पड़ी है और कृष्ण उसे छिप कर देखते है।

केशव ने बोधमाल के अंतर्गत कुछ प्रेमकूट भी लिखा है जो एक प्रकार से सूरदास के दृष्टकूटों की ही श्रेणी का है। अंतर यह है, कि उनके खोलने के लिए एक शब्द के अनेक अर्थ जानने

और अर्थ की परंपरा लगाने की आवश्यकता है और यहाँ रस-शास्त्र की रूढ़ियों और कवि-परंपरा का ज्ञान अनिवार्य है—

नायिका सखियों मे बैठी है—

> बैठी हुती वृषभानु कुमारि सखीन की मण्डली मण्डि प्रवीनी
> लै कुम्हिलानो सो कंज परी इक पायन आइ गुवारिन धीनी
> चंदन सों छिरकी वह पाकहँ पान दये करुणारस भीनी
> चंदन चित्र कपोलन लोपिकै अञ्जन आँजि विदा कर दीनी

ग्वालिनी ने कुम्हलाया हुआ जो कमल सामने पैरो पर रखा, इसका अर्थ है कि नायक इसी की भाँति तेरे विरह मे कुम्हला गया है। नायिका ने उस कमल पर चंदन छिड़का, अर्थ बताया कि मैं उसके हृदय की विरहतपन शांत करूँगी। पान दिया—कि मैं भी उससे अनुराग करती हूँ। उस ग्वालिनी के गालों पर चंदन लेप कर और आँखो मे अंजन लगा कर विदा किया, अर्थात नायक जान ले जब चाँदनी फैलेगी और सब सो जायेंगे, तब मिलूँगी। इसी प्रकार यह दूसरा पद है—

> सखि सोहत गोप सभा महँ गोविंद बैठे हुते द्युति को धरिकै
> जनु केशव पूरण चंद्र लसै चित चोर चकोरन को हरिकै
> तिन को उलटो करि आन दियो किहु नीरज नीर नए भरिकै
> कहि काहे ते नेकु निहार मनोहर फेर दियो कलिका करिकै

गोविंद गोपसभा मे बैठे थे, इससे नायिका कार्यदक्षा दूती स्पष्ट तो कह नहीं सकती थी। अतः इशारा हुआ। उसने पानी से भरा हुआ कमल लाकर उलटा कर उन्हें दिया—तात्पर्य यह है कि नायिका उनके वियोग से इस तरह रो रही है। कमल नेत्रों के उपमान हैं ही। नायक ने उसको थोड़ा देखा, और उसके फैले हुए दलों को संकुचित कर, उसे कली का रूप बनाकर दूती को लौटा दिया। अभिप्राय है कि जब कमल संकुचित हो जायगा, तब मिलूँगा।

काव्य-प्रसिद्धि है कि रात होने पर कमल संकुचित हो जाते हैं। सारे छन्द का ढाँचा इसी रूढ़ि प्रसिद्धि पर खड़ा है और इसे समझे बिना पाठक छन्द का अर्थ नहीं जान सकता। कवि ने इन प्रेमकूटों का बोधमाल के उदाहरण में रखा है, परन्तु हम जानते हैं कि बाद में उनपर स्वतन्त्र रूप से कविता का प्रासाद खड़ा किया गया।

रसिकप्रिया की विशेपता उसकी सुन्दर भापा और उसका प्रसादगुण है, जैसे

चंदन विटप वपु कोमल अमल दल
कलित ललित तालपरी लवङ्ग की
केशोदास तामैं दुरी दीप की सिखासी दौरि
दुरखत नीलवास द्युति अंग अंग की
पौनयान पत्तीपद शब्द जित तित होत
तित तित चौंकि चौंकि चाहै चोप संगकी
नंदलाल आगम विलोकै कुञ्ज जालवाल
लीन्ही गति तेही काल पंजर पतंग की

परन्तु कहीं-कहीं लोकज्ञान को आवश्यक अंग बनाकर भाव को क्लिष्ट भी बना दिया गया है, जैसे इस शतरञ्ज के रूपक में—

प्रेममय भूप रूप सचिव सँकोच शोच
विरद विनोद फील मेलियत पचि कै
तरल तुरग अविलोकनि अनत गति
रथ मनोरथ रहे प्यादे गुन गचि कै
दुहूँ ओर परी जोर घोर घनी केशोदास
होइ जीत कोनकी को हारे हिय लचि कै
देखत तुम्है गुपाल तिहि काल डरि बाल
उर शतरज कैसी बाजी राखी रचि कै

कृष्ण को देखते ही नायिका ने अपने हृदय रूपी शतरंज पर बाजी रच दी—खूब ! सूरदास ने भी अपने भक्तिकाव्य में शतरंजज्ञान का प्रमाण दिया है, परन्तु उन्होंने संसार के माया प्रपञ्च को ही शतरंज बनाया है। केशवदास ने नायिका के हृदय-भावों को ही शतरंज की चालें बना डाला। स्थान-स्थान पर केवल नामावली रूप में नायिका के अंगों के प्रतीक रख दिये गये हैं, जैसे

> कञ्ज कैसे फूले नैन दारों से दशन एन
> बिंब से अधर इक सुधा सो सुधार्‌यो है
> बेनी पिक बेनी की त्रिवेनी की बनाइ गुही
> बरनी बारीक कटि हों को करि हार्‌यो है
> कीने कुच अमल कलपतरु कैसे फल
> केशोदास भौन बिटिप मुगुध बिचार्‌यो है
> देख्यो न गुपाल सखि मेरी को शरीर सब
> सोने में सँवारि सब सोंधे सों सुधार्‌यो है

इस प्रकार के पदों ने काव्यशास्त्र-ज्ञान की एक रूढ़ि ही पैदा कर दी जिसने परवर्ती सारे काव्य को प्रभावित किया।

'रसिकप्रिया' में अनेक ऐसे कुरुचिपूर्ण स्थल भी हैं जिनके लिए केशव स्वयं ही लांछित हैं। राधाकृष्ण का प्रेम एकांतिक प्रेम है। कम से कम रीतिकवियों में, वहाँ गोपियों, राधा और कृष्ण का ही व्यक्तित्व प्रधान है। नन्द, यशोदा वृषभानु और उनकी पत्नी, सास-ससुर मा-बाप के रूप में नहीं आती। इस एकांतनिष्ठ लीलाविलास के दर्शन इसे भक्त कवियों में ही होते हैं। बाद को इस एकांतिक प्रेम के चित्रण में एकदम मर्यादा का अभाव हो गया। केशवदास ने अपने काव्य में प्रसंगवश नायक-नायिका के मिलन की योजना की है। एक पद में धाई के घर मिलने की

व्यवस्था है, दूसरे पद मे घर में आग लग गई है, भाग-दौड़ मची है, परन्तु कृष्ण इस हड़बड़ मे सोती राधिका को जगाकर

'लोचन विसाल चारुचिबुक कपोल चूमि
चापे की सी माला लाल लीनी उर लाय कै

एक पद में उत्सव के दिन मिलना होता है, एक पद में न्योते के मिस। वास्तव मे केशव की कल्पना लोकव्यवहार के साथ चलती थी, अतः उन्होंने ये भेद कर दिये। फिर ये उदा-हरण देना पड़े। इनसे ही 'देव' जैसे कवियों को कुरुचिपूर्ण कवित्त लिखने का उत्साह मिला।

रसिकप्रिया मे केशव भावव्यंजना पर इतना बल देते हैं कि वे अस्वाभाविक हो जाते है। सच तो यह है कि परवर्ती रीतिकाल की शृंगारस विवेचन की सभी प्रवृत्तियाँ केशवदास की इस रचना मे पूर्ण विकसित रूप से मिलती हैं। इन प्रवृत्तियो को उपस्थित करने का श्रेय कुछ उन्हे है, कुछ उनके वातावरण को कुछ उस समिति रीतिशास्त्र को जिसका सहारा उन्होने लिया। परन्तु स्वयं युग की चेतनाधारा किस ओर दौड़ रही है, इसमे भी सन्देह नही है, नहीं तो परवर्ती कवियो को केशव का काव्य एक बड़ी आवश्यक रूढ़ि न बन पाता।

४

केशव का प्रकृति-वर्णन

जैसा हम कह चुके है, केशव ने प्रकृति-वर्णन को 'अलंकार' अन्दर रखा है। कविप्रिया के प्रकृति सम्बन्धी स्थलो को पढ़ने यह पता चलता है कि वे वस्तु-निरूपण मात्र को वर्णन मानते। इससे हमे आशा करनी चाहिये कि उनके प्रकृति-वर्णन नामो-लेख मात्र होंगे। परन्तु केशव वैसा कवि नामोल्लेख मे भी पांडित्य दिखाए बिना नहीं रह सकता इसलिए वह श्लेष का सहारा लेकर चमत्कार की सृष्टि करता है। नामोल्लेख मात्र से प्रकृति का कोई रूप सामने नहीं आ सकता, श्लेष के प्रयोग से तो प्रकृति सौन्दर्य कोसो दूर भाग जाता है। दंडकवन का वर्णन करते हुए केशव लिखते हैं—

वेर भयानक सी अति लगै
अर्कसमूह तहाँ जगमगै

× × ×

पाण्डव की प्रतिमा सम लेखो
अर्जुन भीम महामति देखो

यहां बेर, अर्क, अर्जुन और भीम शब्दो मे श्लेष है—

बेर=(१) बेरफल (२) काल।
अर्क=(१) धतूरा (२) सूर्य।
अर्जुन=(१) कुकुभ वृक्ष (२) पांडुपुत्र।
भीम=(१) अम्लवेतसवृक्ष (२) पांडुपुत्र।

कुकुभ को अर्जुन और अम्लवेतस को भीम केवल शब्द-साम्य की दृष्टि से कहा गया है, नहीं तो इनमें समानता ही क्या है ? इस प्रकार कोई प्रकृति-चित्र उपस्थित नहीं हो सकता।

इसी प्रकार जहाँ उद्दीपन भाव के अन्तर्गत प्रकृति का वर्णन है, वहाँ वह अलंकार-प्रतिष्ठा के पीछे छिप जाता है। वर्षा और कालिका दोनों का एक साथ वर्णन करते हुए केशवदास लिखते हैं—

> भौंहैं सुरचाप चारु प्रमुदित पयोधर
> भूषण जराय ज्योति तडित रलाई है
> दूरि करी सुख दुख सुखमा शशी की नैन
> अमल कमलदल दलित निकाई है
> केशवदास प्रबल करेणुका गमन हरे
> मुकुत सुहंसक शबद सुखदाई है
> अम्बर बलित मति मोहै नीलकण्ठ जू की
> कालिका कि बरषा हरषि हिय आई है

(इन्द्र-धनुष ही जिसकी सुन्दर भौंहे हैं, बादल ही जिसके उन्नत कुच है, विज्जुछटा ही जिसके जड़ाऊ जेवर है, जिसने अपने मुख से सहज ही मे चद्रिमा के मुख की शोभा दूर कर दी है, इत्यादि, जो नीलकंठ महादेव की मति को मोहित करती है, वह कालिका या पार्वती है या यह वर्षा है।)

निम्नलिखित सूर्य का यह वर्णन उत्प्रेक्षा अलंकार के कारण उद्दीपन विभाव को ढक लेता है—

> अरुणगात अति प्रात, पद्मिनी प्राणनाथ मय
> मानहु केशवदास कोकनद कोक प्रेममय
> परिपूरण सिंदूरपूर कैधौं मंगलघट
> किधौं इन्द्र को छत्र मढ़्यो माणिक मयूख पट

शोणित कलित कपाल यह, किल कपालिका काल को
यह ललित लाल कैधौं लसत दिग्भागिनि के भाल को

सूर्य प्रात काल अति लाल होकर उदय हुए है, मानो कमल [illegible] चक्रवाक का प्रेम जो हृदय मे है, बाहर निकल आया है। [illegible] कोई सिंदूर मे रँगा मङ्गल घट है। या इंद्र का छत्र है जो [illegible] की किरणो से बने हुए कपड़े से बनाया गया है। या [illegible]-पूर्वक काल रूपी कापालिक के हाथ मे यह किसी का रक्त [illegible] सिर है, या पूर्व दिशा रूपी स्त्री के मस्तक का माणिक है।)

राम-काव्य मे पुराणो की भाँति वर्षा और शरद के वर्णन का बड़ा महत्त्व है। केशवदास ने भी उनका वर्णन किया है। वर्णन उद्दीपन के भीतर रखा जा सकता है। वह अनेक अलंकारो से पुष्ट है। वर्षा का वर्णन इस प्रकार है—

देखि राम बरषा ऋतु आई। रोम रोम बहुधा दुखदाई
आसपास तम की छवि छाई। राति द्यौस कछु जानि न जाई
मन्द मन्द धुनि सो घन गाजैं। तूर तार जनु आवझ बाजैं
ठौर ठौर चपला चमकैं यो। इन्द्रलोक तिय नाचति है ज्यों

(देखो राम, वर्षा ऋतु आ गई। इससे उद्दीपन के कारण रोम-रोम को दुःख होता है। चारो ओर अँधेरा इतना है कि रात-दिन कुछ जाना नहीं जाता। मन्द-मन्द ध्वनि से बादल गरजते हैं उनका शब्द ऐसा लगता है मानो तुरही, मँजीरा और तारा बजते हो। और जगह-जगह बिजली चमकती है जैसे इन्द्रपुरी की अप्सराएं नाचती हो।)

सोहत घन स्यामल घोर घने। मोहत तिनमे बकपाँति मने
संखावलि सी बहुधा जल स्यो। मानो तिनको उगिलै बल स्यो
सोभा अति शक्र शरासन मे। नाना द्युति दीखति है घन मे
रत्नावलि सी दिवि द्वार मनो। वर्षागम बाँधिय देव मनो

घनघोर घने दसहू दिसि छाये । मघवा जनु सूरज पै चढि आये
अपराध बिना छितिके तन ताये । तिन पीडन पीड़ित है उठि धाये
अति धावत बाजत दुंदुभि मानो । निघात सबै पविमान बखानो
धनु है, यह गौर मदाइन नाहीं । सरजाल बहै जलधार वृथाही
यह चातक दादुर मोर न बोलै । चपला चमकैन फिरै खँग खोलै
दुतिवंतन को विपदा बहु कीन्ही । धरती कहँ चन्द्रवधू धरि दीन्ही

(घोर काले बादल सोहते हैं, उनमे उड़ती हुई बक-पंक्तियाँ मन को मोहती हैं—जैसे बादल समुद्र से जल पीते समय एक साथ बहुत से शंख भी पी गए थे, जो वे बलपूर्वक उगल रहे हैं। इन्द्र का धनुप अत्यधिक शोभा दे रहा है जैसे वर्षा के स्वागत में देवताओं ने सुरपुर के द्वार पर रत्नों की बन्दनवार बाँधी हो। सब ओर घने बादल छाये हुए हैं मानों इन्द्र ने सूर्य पर चढ़ाई की है—सूर्य ने विना अपराध पृथ्वी को संतप्त किया, अतः पृथ्वी के दुख से दुखित होकर सूर्य को दंड देने के लिए इन्द्रदेव दौड़ पड़े। बादल गरज रहे हैं जैसे रण नगारे बज रहे हैं और बिजली की कड़क जैसे वज्रपात की ध्वनि हो। यह इन्द्र-धनुष नहीं है, सुरपति का चाप है, बूँदे नहीं है, यह बाणवर्षा है। पपीहे, मेढक और मोर नहीं बोलते, इन्द्र के भट सूर्य को ललकार रहे हैं। यह बिजली नहीं है, वरन् इन्द्र महाराज तलवार खोले घूम रहे है।)

यहाँ तक तो ठीक है, परन्तु जब केशव पौराणिक गाथाओं का आश्रय लेते है और उसके बल पर चमत्कार उत्पन्न करते हैं, तो वे अपने प्रकृत रूप मे हमारे सामने आते है—

तरुनी यह अत्रि ऋषीश्वर कीसी । उर मे इम चद्रप्रभा सम नीसी
वरपा न सुनौ किलकै कह काली । सब जानत है महिमा अलि माली

(यह वर्षा अत्रिपत्नी अनुसूया-सी है क्योंकि जैसे अनुसूया के गर्भ मे सोम की प्रभा थी वैसी ही इस बादल मे भी चन्द्रप्रभा छिपी है

यह वर्षा के शब्द नहीं है, वरन् काली सुन्दर शब्दों से हँस रही है। जैसे काली की समस्त महिमा महादेव ही जानते हैं, वैसे ही वर्षा की समस्त महिमा सर्प-समूह ही जानता है।)

परन्तु वर्षाकल नालियों को अभिसारिका बनाना तो कल्पना की विडम्बना ही होगी—

अभिसारिनी सी समझौ परनारी। सतमारग मेटन को अधिकारी
मति लोभ महामद मोह छई है। द्विजराज सुमित्र प्रदोष मई है

(इस वर्षा से बनी हुई नालियाँ परकीयाभिसारिका-सी है। जैसे वे स्वधर्म को मेटती है, वैसी ही इस वर्षा से बड़ी-बड़ी नालियों ने अच्छे मार्गों के मिटाने का अधिकार पाया है। यह वर्षा पापी की लोभमद से भ्रष्ट बुद्धि है जो ब्राह्मण और अच्छे मित्रों को दोष देती है—यह चन्द्रमा और सूर्य को अंधकार से छिपाए रहती है) शरद्वर्णन भी अलंकारों पर आश्रित है। शरद के चार रूपकों का प्रयोग किया गया है—सुन्दरी युवती, नारद की मति, पतिव्रता स्त्रियों का सच्चा प्रेम और वृद्ध दासी। यहाँ उद्दीपन विभाव की पुष्टि की ओर से भी ध्यान हटा लिया गया है।

दन्तावलि कुंद समान गनो। चंद्रानन कुंतल भौंर घनो
भौंहैं धनु खंजन नैन मनो। राजीवनि ज्यों पद पानि मनो
हारावलि नीरज हीय रमैं। जनु लीन पयोधर अम्बर मैं
पाटीर जुन्हाइहि अंग धरे। हँसी गति केशव चित्त हरे

(इस शरद सुन्दरी के कुन्द पुष्प है, चन्द्रमा मुख, घटा भ्रमर-समूह। नवीन बने हुए धनुष ये भौंहे है, हाथ-पाँव लाल कमल है। ये कुन्द पुष्प या मोतियों का हृदय पर पड़ा हार समझो—जिन्हें बादलों ने कपड़ों से छिपाए है। चाँदनी ही का चन्दन तन पर लगाए हुए मन को हरती है।)

श्री नारद की दरसै मति सी। लोपै तम ताप अकीरति सी

(जैसे नारद की बुद्धि से अज्ञानांधकार, त्रिताप और अपयश का लोप होता है वैसे ही इस शरद से भी वर्षा का अंधकार, सिंह के सूर्य का ताप और अकर्तव्यता का लोप होता है।)

मानो पतिदेवन की रति सी। सन्मारग की समझौ गति सी

(यह शरद पतिव्रताओं के सच्चे प्रेम के समान है। जैसे उनके कारण अन्य स्त्रियों को भी सन्मार्ग सूझ पड़ता है, वैसे ही शरद के आने से ही मार्ग चलने योग्य हो गये हैं।)

लक्ष्मण दासी वृद्ध-सी आई शरद सुजाति
मनहुं जगावन को हमहि बीते वरषा राति

(यहाँ शरद की उपमा वृद्ध दासी से दी गई है। जैसे वृद्ध दासी प्रभात मे आकर राजकुमारों को जगाती है, वैसे ही यह शरद भी हमे वर्षारूपी रात बीतने पर जगा कर कर्मरत करने आई है।)

सूर्योदय का वर्णन भी देखिये—

कुछ राजत सूरज अरुन खरे। जनु लक्ष्मण के अनुराग भरे
चितवत चित्त कुमुदिनी त्रय। चार चकोर चिता सी लसै

पसरे कर कुमुदिनी काज मनो
किधौं पद्मिनी सी सुखदेन घनौ
जनु ऋक्ष सबै यहि त्रास भगे
जिय जानि चकोर फँदानि ठगे

व्योम मे मुनि देखिये अति लालश्री मुख साजहीं
सिंधु में बड़वानि की जनु ज्वालमाल विराजहीं
पद्मरागिनि की किधौं दिवि धूरि पूरित सी भई
सूर बागिन की खुरी अति तिक्षता तिनकी हई

(लाल सूर्य इस तरह शोभा देते है मानो लक्ष्मण के अनुराग से भरे है। सूर्य को देखते ही कुमुदिनी अपने चित्त में डरती है

और चारों ओर चकोरों के लिए तो चिता के ही समान है। सूर्य की पैनी किरणें मानों उसने कुमुदिनी को पकड़ने के लिए हाथ फैलाये हैं या कमलिनी को अति सुख देने के लिए। सूर्य की किरणों के जाल में फँसने के डर के भाग गये हैं और चकोर भी ठगा-सा हो रहा है। आकाश में लाल सूर्य लगता है कि समुद्र में वड़वाग्नि की ज्वालाओं का समूह एकत्र होकर विराज रहा है अथवा सूर्य के घोड़ों के अति तीक्ष्ण सुमों से चूर्ण की हुई पद्मराग मणियों की धूल ने सारा आकाश पूरित-सा हो गया है।)

केशव का पंपासर-वर्णन है—

अति सुंदर सीतल सोम बसै। जहँ रूप अनेकनि लोभ लसै
बहु पंकज पक्षि विराजत हैं। रघुनाथ विलोकत लाजत हैं
सिगरी ऋतु सोभित शुभ्र जही। लह ग्रीषम पै न प्रवेश सही
नव नीरज नीर तहाँ सरसै। सिय के सुभ लोचन से दरसै

सुन्दर सेत सरोरुह में करहाटक हाटक की दुति को है
ता पर भौंर भलो मनरोचन लोक विलोचन की रुचि रोहै
देखि दई उपमा जलदे विन दीरघ देवन के मन मोहै
केशव केशवराय मनो कमलासन के सिर ऊपर सोहै

[illegible] चन्द्रन बास बहै, अति मोहत न्यायमन मति को
मृगमित्र विलोकत चित्त जरै लिये चन्द्र निशाचर-पद्धति को
प्रतिकूल शुकादिक होहिं सबै जिय जानि नहीं इनकी गति को
[illegible] देत तड़ाग तुम्हें न बने कमलाकर है कमलापति को

(पंपासर सुन्दर और शीतल है और वहाँ अनेक रूप से लोभ [illegible] है। वहाँ बहुत प्रकार के कमल और पक्षी हैं पर वे सब [illegible] रघुनाथ को देखकर लज्जित होते हैं। वहाँ समस्त ऋतुएँ [illegible] हैं पर ग्रीष्म ऋतु नहीं होती। जल में नवीन खिले कमल

सीता के सुन्दर नेत्रों के समान दिखलाई पड़ते हैं। सुन्दर सफेद कमल में पीली छतरी है। इस पर सुन्दर भौंरा बैठा है इसको देखकर जल-देवियों ने ऐसी उपमा दी जिसे सुनकर बड़े-बड़े देवताओं के मन मोहित हो गए।—कि इस पीली छतरी पर काला भौंरा ऐसा जान पड़ता है मानो ब्रह्मा के सिर पर विष्णु विराजमान हों। हे कमलाकर पंपासर, कमलापति श्रीराम को तुम क्यों दुःख देते हो, यह बात तुम्हें योग्य नहीं क्योंकि तुम कमलाकर हो, ये कमलापति, इससे तुम्हारे दामाद हुए। यदि कहो कि मलय पवन दुःख देता है, तो वह तो जड़ है, दुष्ट सर्प के संग से वह विषैला है। चन्द्रमा जो इनके चित्त को दग्ध करता है, सो भी ठीक, है तो आखिर वह रात्रिचर! शुकपिकादि पक्षी मधुर स्वर से सीता की याद दिलाकर उन्हें दुःख देते हैं पर वे जड़ हैं, इनकी विरह दशा को नहीं जानते। परन्तु तुम सम्बन्धी होकर क्यों ऐसी बात करते हो जो भगवान श्रीराम को दुखित करती है, यदि हम इस वर्णन का विश्लेषण करें, तो हमें केशव की प्रकृति सम्बन्धी धारणा का पता चलेगा।)

१ली पंक्ति—इसमें ध्वनि से सरोवर की शीतलता और मनमोहकता का वर्णन है।

२री पंक्ति—यहाँ रूढ़ि से सहारा लिया गया है जहाँ कमलों और पत्तियों की उपमा अंगों से दी जाती है। यहाँ भी अभिधा का सहारा न लेकर लक्षणा का सहारा लिया गया है।

३री—प्रकृति के सम्बन्ध में रूढ़ि—शीतलता की व्यंजना—क्लिष्ट कल्पना द्वारा अभिधेय की पूर्ति।

४थी—उपमा

पद १—यहाँ उत्प्रेक्षा ही ध्येय है, वह भी कल्पना को खींचातानी से सिद्ध की गई है। सारे सरोवर में से केवल कमल पर ही दृष्टि गड़ा दी गई है।

पद २—इसमें वक्रोक्ति का सहारा लेकर (कमलाकर = पासर, कमला का पिता जो राम को व्याहो है) राम को पंपासर ा दामाद बताया है। एक अत्यन्त क्लिष्ट कल्पना—राम तुम्हारे माद है, तुम इन्हें दुःख क्यो देते हो?

संक्षेप मे हम कह सकते है कि (१) केशव ने प्रकृति को ाव्य-रूढ़ियों और अलंकारों के भीतर से देखा है, (२) अलकारों ौर विशेषत. श्लेष के कारण उनके प्रकृति वर्णन मे प्रकृति का ोई सौन्दर्य प्रस्फुटित नहीं होता, (३) उन्होने प्रकृति के निम्न योग किये हैं—(१) नामोल्लेख-प्रणाली, जैसे तीसरे प्रकाश के न-वर्णन मे—

तरु तालीष तमाल ताल हिंताल मनोहर
मंजुल मंजुल लकुच बकुल के नारियर
एला लता लवङ्गसङ्ग पुगीफल सोहै
सारी शुककुल कलित चित्त कोकिल अलि मोहै
शुभ राजहंस कलहस कुल नाचत मत्त मयूर गन
अति प्रफुलित फलित सदा रहै केशवदास विचित्र बन

(२) उद्दीपन विभाव के लिए प्रकृति का वर्णन, (३) श्लेष, रूपक और उत्प्रेक्षा आदि के साथ क्लिष्ट कल्पना, (४) प्रकृति को द्रष्टा के दृष्टिकोण से देखना, जैसे

कछु राजत सूरज अरुण खरे
जनु लक्ष्मण के अनुराग भरे

यहाँ प्रकृति मानसिक अवस्था का प्रतीक है, (५) प्रकृति में कल्पनात्मक सौन्दर्य-निरीक्षण, जैसे

चढ्यो गगनतरु धाय दिनकर बानर अरुण मुख
कीन्हो झुकि झहराय, सकल तारका कुसुम बिन

(६) नीति आदि की दृष्टि के साथ जैसे भागवत अथवा मानस मे, परन्तु यह प्रयोग बहुत कम है, जैसे—

१—बरनत केशव सकल कवि विषम गाढ़ तम सृष्टि
कुपुरुष सेवा ज्यों भई सन्तत मिथ्या दृष्टि
२—जहीं वारुणी की करी रंचक रुचि द्विजराज
तहीं कियो भगवंत बिन संपति सोभा साज

अधिकांश प्रकृतिवर्ण (२)(३) के अंतर्गत हैं। ३०वें प्रकाश का चंद्रवर्णन (३) का अच्छा उदाहरण है—

(सीता)

फूलन की शुभ गेंद नई है। सूंघि शची जनु रची दई है
दर्पण शशि श्री रति को है। आसव काय महीपति को है
मोतिन को श्रुति भूषण जानो। भूलि गई रवि की तिय मानो
(उत्प्रेक्षा)

(राम)

अङ्गद को पितु सो सुनिये जू। सोहत कण्ठ सङ्ग लिए जू
(केवल श्लेष के बल पर)

(सीता)

भूप मनोमय छत्र धर्यो ज्यों। सोक वियोगिनि को दिसयो ज्यों
देव नदी जल राम कह्यौ जू। मानहु फूलि सरोज रह्यौ जू
शङ्ख किधौं हरि के कर सोहै। अंबर सागर ते निकसो है

(राम)

चारु चद्रिका सिंधु मे शीतल स्वच्छ सतेज
मनो शेषमय शोभित है हरिणाधिष्ठित सेज

(केशोदास)

केशोदास है उदास कमलाकर सो कर
शोषक प्रदोष ताप तमोगुण तारिये
अमृत अशेष के विशेष भाव बरस्त
कोकनद मोह चंद्र खंजन विचारिये

परम पुरुष यह विमुख परुष सब
सुमुख सुखद विदुषक उर धारिये
हरि हैं री हिये मे न हरिख हरिणनैनी
चंद्रमा न चंद्रमुखी नारद निहारिये

पर के अवतरण मे उत्प्रेक्षाएं इस प्रकार है—

१—शची की फूल की गेंद है चंद्रमा

२—रति का दर्पण है

३—सूर्यपत्नी का कर्णाभूषण है

४—तारा उसके साथ है, इससे वह अंगद का पिता बालि
ान पड़ता है

५—छत्रयुत कामदेव है

६—स्वर्गंगा का कमल है

७—अंबररूपी समुद्र से निकलता हुआ भगवान का आयुध
ख है

८—इस चंद्रमारूपी क्षीरसागर मे शेषशय्या पर मृगांक के
स स्वयं विष्णु विराज रहे है

९—यह चन्द्रमा नही है, ऋषि नारद है

यह स्पष्ट है कि केशव का प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण अधिकांश में
क्लिष्ट है। वह श्रीहर्ष से अधिक प्रभावित जान पड़ते है। यह
र्ष का विषय है कि रीतिकाल के कवियो ने उनके दृष्टिकोण
ो सपूर्णतः नही अपनाया। नही तो हमे प्रकृति के सारे वर्णन
लेष और उत्प्रेक्षा से भरे हुए ही मिलते। रीतिकाल का भी
अधिकांश वर्णन उद्दीपन विभाव की पुष्टि के लिए हुआ है और
सेनापति जैसे एक दो कवियो को छोड़कर दूसरे कवियो ने रूढ़ि का ही
अधिक पालन किया है। उनका प्रकृति से सीधा आत्मानुभव का
संबन्ध नही जान पड़ता। परन्तु फिर भी वहाँ वह विकृति नही
जो केशव के काव्य मे दिखलाई पड़ती है। पांडित्य के भीतर

से प्रकृति को देखने का यही फल हो सकता था। वाल्मीकि में "प्रवर्षण" पर्वत का अत्यन्त सुन्दर वर्णन है। इसे केशव के वर्णन से मिलाइये—

> देख्यो सुभ गिरिवर, सकल सोभधर, फूल वरद बहु फलनि फरे
> सँग सरभ ऋच्छ जन, केसरि के गन, मनहु चरन सुग्रीव परे
> सँग सिवा विराजै, गजमुख गाजै, परभृत बोलै चित्त हरे
> सिर सुभ चंद्रक धर, परम दिगम्बर, मनोहर अहिराज धरे

इसमे श्लेष से पुष्ट उल्लेख अलंकार है। श्लेष इस प्रकार है—

१—सरभ (१) पशु (२) वानरो की एक जाति
२—ऋच्छ (१) रीछ (२) जामवंत
३—केसरी (१) सिह (२) वानरो की एक जाति
४—सिवा (१) शृगाली (२) पार्वती
५—गजमुख (१) गणेश (२) मुख्य मुख्य जाति के हाथी
६—परभृत (१) कोमल (२) बड़े-बड़े सेवक, अर्थात् नन्दी, भृंगी, इत्यादि
७—चद्रक (१) जल (२) चद्रमा
८—दिगम्बर (१) दिशाएँ जिसका परिधान हो, बहुत बड़ा नंगा, (२) वस्त्ररहित
९—अहिराज (१) बड़े सर्प, (२) वासुकि।

पहली दो पंक्तियाँ

अर्थ

श्रीरामजी ने उस पवित्र पहाड़ को देखा कि सब प्रकार की शोभा से युक्त है, अनेक रङ्ग के फूल फूले है और बहुत प्रकार के फल भी लगे है। वह पहाड़ अनेक वनपशु, रीछ और सिहो से युक्त है। ऐसा जान पड़ता जैसे सुग्रीव वानर, जामवन्त और केशरी जाति के वानरो को लिए हुए सुग्रीव राम के चरणो में पड़े हैं।

अंतिम दो पंक्तियाँ

इस पर्वत मे शृगाल भी है, बड़े बड़े हाथी भी गरजते है, यल की बोली चित्त हरती है। इस पर्वत पर जलाशय भी है र यह अति विस्तृत है। यहाँ बड़े-बड़े सर्प रहते है।

यह पर्वत शिव है, साथ मे शिवा (पार्वती) और गणेश है। दी भृंगी आदि है जो स्तुति-गान से उनको प्रसन्न करते है। वजी के सिर पर चंद्रमा है। वे परम दिगम्बर है और वासुकि धारण किए हुए है।

इस प्रकार मस्तिष्क पर बल देकर साम्यवाची शब्दो के हारे या श्लेष से कविता को क्लिष्ट बना देना, केशव के बाये थ का खेल है। इससे प्रकृति का सारा सौन्दर्य ताश के हल की भाँति ढह पड़ता है।

अत मे डा० बड़थ्वाल के शब्दो मे —"प्रकृति के जितने भी र्णन उन्होने (केशव ने) दिये है, वे प्रकृति-निरीक्षण का जरा ी परिचय नही देते। × × उन्होने × प्रकृति का परिचय कवि-रपरा से पाया है × × × मालूम होता है कि प्रकृति के बीच में आँखे बन्द करके जाते थे। क्योकि प्रकृति-दर्शन से प्रकृत कवि के हृदय की भाँति उनका हृदय आनन्द से नाच नही उठता। प्रकृति के सौन्दर्य से उनका हृदय द्रवीभूत नही होता। उनके हृदय का वह विस्तार नही है जो प्रकृति से भी मनुष्य के सुख-दुख के लिए सहानुभूति ढूँढ सकता है, जीवन का स्पंदन देख सकता है, परमात्मा के अंतर्हित स्वरूप का आभास पा सकता है। फूल उनके लिए निरुद्देश्य खिलते है, नदियाँ बेमतलब बहती है, वायु निरर्थक चलती है। प्रकृति मे वे कोई सौन्दर्य नही देखते, वेर उन्हे भयानक लगती है, वर्षा काली का स्वरूप सामने लाती है और उदीयमान अरुणिमामय सूर्य कापालिक के शोणित भरे खप्पर का स्वरूप उपस्थित करता है। प्रकृति की सुन्दरता केवल पुस्तको

में लिखी सुन्दरता है। सीताजी के वीणावादन से मुग्ध होकर घिर आये हुए मयूर की शिखा, सूए की नाक, कोकिल का कंठ, हरिणी की आँखें, मराल की मंद-मंद चाल चलने वाले पाँव इसलिए उनके राम से इनाम नहीं पाते कि ये वस्तुएँ वस्तुत सुन्दर है बल्कि इसलिए कि कवि इन्हे परंपरा से सुन्दर मानते चले आये हैं, नहीं तो इनमें कोई सुन्दरता नहीं। इसलिए सीताजी के मुख की प्रशंसा करते हुए वे कह गये है—

देखे भावे मुख, अनदेखे कमलचंद

कमल और चंद्रमा देखने में सुन्दर नहीं लगते ? हद हो गई हृदयहीनता की। सुधी आलोचक पंडित-प्रवर स्वर्गीय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते है—"वन, नदी पर्वत आदि इन याचक कवियों को क्या दे देते जो ये उनका वर्णन करते ! जायसी, सूर, तुलसी आदि स्वच्छन्द कवियों ने हिंदी कविता को उठाकर खड़ा ही किया था कि केशव ने पशुओं की भाँति उसके पैर छानकर गंदे बाजारों में चरने के लिए छोड़ दिया। फिर क्या था, नायिकाओं के पैरों में मखमल के गुदगुदे बिछौने और गुलाब के फूल की पंखड़ियाँ गड़ने लगी। यदि कोई षट्ऋतु की लीक पीटने खड़े हुए तो कहीं शरद की चाँदनी से किसी विरहिणी का शरीर जलाया, कहीं कोयल की कूक से कलेजों के टुकड़े किये, कहीं किसी को प्रमोद में मत्त किया, क्योंकि उन्हें तो इन ऋतुओं के वर्णन को उद्दीपन मानकर संयोग या वियोग-शृङ्गार के अंतर्गत ही लाना था। उनकी दृष्टि प्रकृति के इन व्यापारों पर तो जमती ही नहीं थी, नायक या नायिका पर ही दौड़-दौड़ कर जाती थी। अत. उनके नायक-नायिका की अवस्था विशेष और प्रकृति की दो-चार इनी-गिनी वस्तुओं से जो सम्बन्ध होता था, उसी को दिखाकर वे किनारे हो जाते थे।"

(नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका, भाग १४, संख्या १०)

इतना होने पर कहीं-कहीं केशव मे प्राकृतिक सुन्दर चित्र
ास्थित हो जाते है, ये ऐसे स्थलो पर जहाँ से समसामयिक काव्य
प्रभावित है या जहाँ उन्होंने कल्पना के घोड़ो की रास अपने
थ मे रखी है। सूरदास का एक पद है—

उगत अरुन विगत सर्वरी ससाक किरन—
हीय दीय दीपक मलीन छीन दुति समूह तारे

ी जैसा कुछ वर्णन केशव ने प्रातःकाल जागरण का
ाया है—

तरनि किरन उदित भई दीपज्योति मलिन गई
सदय हृदय बोध उदय ज्यौ कुबुद्धि नासै
चक्रवाक निकट गई चकई मन मुदित भई
जैसे निज ज्योति पाय जीव ज्योति भासै

होने आक्षेपालंकार मे जो बारहमासा लिखा है वह भी सत्य
। "रसिकप्रिया" मे घने अँधेरे बादलो का चित्र देखिये—

राहिन्ह आइ चले घरकौ दसहूँ दिसि मेघ महामिलि आए
दूसरौ बोलत ही समुझै कहिके सब यौ छिति मैं तम छाए

रन्तु ऐसे वर्णन कितने है !

——

५

केशव की भाषा और शैली

केशव के समय तक हिन्दी भाषा के विकास का पूर्ण इतिहास हम नहीं बना पाए है, परन्तु उनसे पहले ब्रजभाषा साहित्यिक भाषा के रूप मे प्रतिष्ठित हो चुकी थी, यह निश्चय है। यही नहीं उसका पर्याप्त विकास भी हो चला था। साहित्य के क्षेत्र मे तब तक अन्य कई भाषाएँ भी आ चुकी थीं। वीरगाथा ने हमें डिंगल का काव्य दिया था। कबीर और अन्य संत कवियों की कविता में खड़ी बोली का अन्य बोलियों से मिश्रित रूप—विशेषकर पूर्वी और पंजाबी। इसे पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने सधुक्कड़ी भाषा कहा है। कबीर ने—मेरी बोली पूरबी—लिख कर अपने काव्य की भाषा को काशी की बोली बतलाया है। अवधी में सूफी कवि लिख चुके थे। तुलसी ने जायसी की भाषा को संस्कृत की गरिमा से भर कर मानस की साहित्यिक अवधी का महल खड़ा किया था। परन्तु ब्रजभाषा ने विशेष साहित्यिक प्रतिष्ठा प्राप्त की। इसी से साफ पता लगता है कि तुलसी की अधिक रचनाएँ इसी ब्रजभाषा मे हैं। जान पड़ता है मानस के बाद उन्होंने ब्रजभाषा काव्य का (विशेपकर सूर के काव्य का) अच्छा अध्ययन किया और उसे अपना माध्यम बनाया। यह अवधी पर ब्रजभाषा का विजय है। कन्नौजी, बुन्देलखण्डी और ब्रजभाषा के क्षेत्र परस्पर मिले हुए हैं, अतः साहित्य मे ब्रजभाषा ने ही इन क्षेत्रों मे आधिपत्य कर लिया और शेष भाषाओं का साहित्य जन-गीतों से आगे नहीं बढ़ सका। ऐसा क्यों हुआ,

इसका भी कारण है। यह युग कृष्ण-भक्ति के प्रचार का था। काव्य और उपदेश इस प्रचार के माध्यम थे। ब्रज कृष्ण-भक्ति का केन्द्र था और यहीं विभिन्न सम्प्रदायों के भीतर से कृष्ण-काव्य का साहित्य सामने आया। यह शीघ्र ही सीमान्त के भाषा प्रान्तों में लोकप्रिय हो गया और उसी के अनुकरण में उसी की भाषा में कविता की गई।

इस प्रकार सामयिक व्यवस्था और परम्परा से केशव को ब्रजभाषा मिली परन्तु वे स्वयं बुन्देलखण्ड में रहे, अतः उनपर बुन्देलखण्डी की छाप होना आवश्यक था। फारसी की शब्दावली का प्रयोग सूर और तुलसी में भी है, केशव भी उससे नहीं बचे। परन्तु फिर केशव की भाषा असाधारण और क्लिष्ट क्यों है, यह प्रश्न है। यह असाधारणता कई प्रकार की है—

१—असाधारण प्रयोग जैसे सुख का प्रयोग सहज के अर्थ में।

२—निरर्थक प्रयोग जैसे जू, सु

३—लिंग-भेद—देवता शब्द बराबर स्त्रीलिङ्ग में लिखा गया है।

४—ठेठ बुन्देलखण्डी शब्दों और मुहावरों का प्रयोग जैसे, ल्यो, गौर मदाइन।

५—संस्कृत के व्याकरण के ढंग के प्रयोग।

कछु आपुन अध अधगति चलति
फल पतितन कहे अरध फलति

६—तुक के लिए असाधारण प्रयोग

जहँ तहँ लसत महा मद मत्त
वर वारन वार न दलदत्त

यहाँ दलदत्त का अर्थ है सेना को दलन में। वारन श्लेष है, हाथी, देर नहीं लगती (वार+न)

७—वीरगाथा के शब्दों और तुकों का प्रयोग—

देखि बाग अनुराग अज्जिय
बोलत कलध्वनि कोकिल सज्जिय

८—अप्रचलित प्रयोग जैसे ब्रह्मा के लिए सरसिज योनि सूरन (सुग्रीव)

९—अन्वय की कठिनाई समास रूप से थोड़े में बहुत भा देने का प्रयत्न—

केहि कारण पठये यहि निकेत
निज देन लेन संदेह हेत

= निज संदेश देन—लेन हेत संदेश

१०—व्यर्थ प्रयोग जैसे निदान

११—गलत प्रयोग हे = थे, सोदर = सहोदर, जीव, जी, चार = चर

१२—संदिग्ध प्रयोग बिलगु = बुराई

१३—ठेठ हिन्दी शब्दों की संधि सोऽब = सो + अब

१४—नए शब्द निघृन = जिसे घृणा न लगे

इस प्रकार की अनेक विशेषताएँ केशव के काव्य को जटिल बना देती है। रसिकप्रिया केशव का सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ है। उसकी भाषा इतनी असंस्कृत नहीं है, जितनी रामचन्द्रिका की। कारण यह है कि रामचन्द्रिका में केशव प्रत्येक प्रकार असाधारण बनना चाहते है। उन्होने सस्कृत वर्णिक छन्दो का बड़ी मात्रा मे प्रयोग किया है—इन छन्दो के चोखटे में हिन्दी के अधिक शब्द बिगड़ गए तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। फिर केशव यह भी चेष्टा नहीं करते कि इन छन्दो को माँज ही लें। केवल उदाहरण के लिए एक दो छन्द लिख देते है। अत: उनकी शैली सरल और सुबोध नही हो पाती। अनेक मात्रिक छंद भी पहली बार केशव

ने ही प्रयोग किये है, यहाँ भी अभ्यास-विरलता के कारण कच्चाई है।

कुछ छन्दो का उदाहरण देने से बात और स्पष्ट हो जायगी कवि भरद्वाज के रूप का वर्णन करता है—

प्रशयित रज राजे हर्ष वर्षा समै से
विरल जटन शाखी सर्वनदी कूल कैसे
जगमग दरशाई सूर के अंशु ऐसे
सुरग नरक हंता नाम श्रीराम कैसे

(१) प्रशयित = संस्कृत।
रज = रजोगुण, धूल (भरद्वाज वर्षा के हर्षमय समय के समान है। जब धूल नहीं रहती है)
राजै = विराजते हैं
हर्ष = हर्षित, हर्षमय (उनके मन मे रजोगुण प्रशायित है)
से = जैसे
(२) शाखी = वृक्ष (वह गंगा किनारे के ऐसे वृद्ध वृक्षों की तरह है जिनकी जड़ें प्रगट हो गई हैं)
स्वर्नदी = स्वर्ग नदी = गंगा (भरद्वाज की जटाएँ भी प्रगट हैं)
(३) जगमग दरशाई = प्रकाशवान, दिखलाई पड़ते हैं। (सूर्य की किरण की तरह से हैं, दीप्त हैं या जग-मार्ग दिखाते हैं)
(४) सुरग = स्वर्ग का ठेठ
सुरग नरक हन्ता = स्वर्ग नरक का नाश कर मोक्ष देने वाले (श्रीराम नाम जो मोक्ष की प्राप्ति कराता है)
(५) नाम श्रीराम = श्रीराम नाम

यहाँ भाषा-विनिमय विचित्रताओं के साथ कवि का वैचित्र्य भी स्पष्ट है जैसे श्लेष का प्रयोग (जटन = जड़े, जटा) रज (धूल, रजोगुण); दूर की सूझ (विरल जटन शाखी स्वर्नदी कूल) और क्लिष्ट कल्पना = सुरग नरक हंता। जहाँ ये तीनों बातें मिल गईं और अभिव्यक्ति असम्पूर्ण है वहाँ केशव का काव्यकूट ही समझिए। ऐसे स्थलों पर पाठक की बुद्धि की बड़ी परीक्षा हो जाती है।

सुग्रीव राम को सीता का पट देते हैं—

पजर कै खजरीट नैनन को केशोदास कैधों मीन मानस को जहु है कि जारु है। अग को कि अंगराग गेडुवा कि गलसुई किधौं कोट जीव ही को उर को कि हास है॥ बरन हमारो काम केलि को कि ताडिबे को ताजनो को विचार को, ब्यजन विचारु है। मान की जमनिका कै कजमुख मूँदिबे को सीताजू को उत्तरीय सब सुख सारु है॥

भाषा-विषयक परिस्थिति—

(१) फारसी का शब्द ताजनो (ताजियाना) = कोड़न
(२) गेडुआ = खास बुन्देली शब्द = तकिया
(३) गलमुई = " " = गले के नीचे लगाने का छोटा गोल और मुलायम तकिया
(४) जमनिका = सं० यवनिका
(५) तर्क कारण जाऊ, हारु, विचारु, भारु यहाँ जारु = जाल
(६) उत्तरीय सं० = ओढ़नी

कल्पना और व्यंजना—

(१) क्या यह मेरे खजन रूपी नेत्रों के लिए पिंजड़ा है अर्थात् जब यह सीताजी के बदन पर रहता था तो नयन इसी में उलझ जाते थे।

(२) मन रूपी मछली के लिए जाल है या मेरा मन इसी के सहारे जीवित है।

(३) मायाजाल है अर्थात मेरे मन को फाँस लेता है।

(४) इसके अंग से लगते ही ऐसे शीतल हो जाता है जैसे अंगराग का लेप कर लिया है।

(५) सुख प्रदान करता है जैसे तकिया गलमुई है।

(६) प्राण-रक्षक जीवित रहो।

(७) हृदय के लिए शोभाप्रद हार है।

(८) जब मैं कामकेलि करता था तो यह हाथो का बंधन हो जाता था।

(९) यह काम-विचारोत्तेजक है, जैसे कोड़ा है या व्यजन (पंखा)।

(१०) मान के समय सीता इसी से कमल-मुख मूँदती थी।

इस तरह यह स्पष्ट है कि भाषा से अधिक कठिनाई क्लिष्ट कल्पना की है—साधारण पाठक की कल्पना इतनी उदात्त नहीं होती। इस कल्पना का आधार रीतिशास्त्र विषयक ज्ञान है, अतः पाठक को रीतिकाव्य की रूढ़ियो को जानना भी अपेक्षित हो जाता है, जैसे "अग को कि अगराग" मे अंदर की शीतलता अपेक्षित है, 'तड़िवे को ताजनो को विचारि को' मे उसकी कामोद्रेकता।

क्लिष्ट कल्पना का एक उदाहरण है लक्ष्मण पम्पासर से कहते है कि तुम कमलाकर हो (नयनो की खान, कमला के घर)। राम कमलापति (लक्ष्मी के पति, विष्णु) है, अतः यह तुम्हारे दामाद हुए, तुम ससुर, इससे इन्हे दुख न दो (दुख देत तड़ाग तुम्हे न बनै कमलाकर ह्वै कमलापति को)। इसमे सारी क्लिष्ट कल्पना "कमलाकर" और "कमलापति" पर खड़ी की गई है।

केशव कमल की छतरी के ऊपर भौरे को देखते है तो एक असाधारण उपमा ही उन्हे सूझती है—

सुन्दर सेत सरोरुह में कर हाटक हाटक की कोहै
तापर भौर भलो मनरोचन लोक विलोचन की रुचि रोहै
दीख दई उपमा जल देविन दीरघ देवन के मन मोहै
केशव केशव राय मनो कमलासन के सिर ऊपर सोहै

(जैसे कमलासन = ब्रह्मा; श्वेत पँखुड़ियों के बीच में छतरी है, वह—केशवराय = विष्णु = नीलाम्बर विष्णु ब्रह्मा के सिर पर विराजमान है) इस प्रकार की उपमा स्पष्टतया उत्प्रेक्षा मात्र है—भला विष्णु ब्रह्मा के सिर पर क्यों बैठें, और बैठें ही, तो कौन सुन्दर बात होगा। भाषा का ऊबड़-खाबड़पन एक दूसरी कठिनाई पैदा करता है। दीरघ देवन = बड़े बड़े देव।

लोक विलोचन की रुचि रोहै = लोक-नेत्रो की रुचि पर चढ़ जाता है—दर्शकों को अच्छा मालूम होता है। रोहै = आरो है (आरोहण करता है)।

केशव का काव्य पांडित्य-जन्य है उसको समझने के लिए संस्कृत पंडित का ज्ञान चाहिए राम करुण (करुण नामक पुण्य-वृक्ष) से याचना करते हैं—

कहि केशव याचक के अरि चम्पक शोक अशोक भये हरि कै
लखि केतक केतकि जाति गुलाब ते तीक्ष्ण जानि तजे डरि कै
सुनि साधु तुम्हें हम बूझन आए रहे मन मौन कहा धरि कै
सिय को कछु सोधु कहै करुणामय हे करुणा! करुणा करि कै

यहाँ करुणामय, करुण तो "करुण" वृक्ष के शब्द से ही कल्पित है। याचक के अरि चम्पक = काव्य-प्रसिद्ध है कि मधु-याचक भ्रमर चम्पक पर नहीं बैठता।

शोक अशोक भये हरि के = अशोक शब्द का अर्थ है, जिसे शोक नहीं, अतः अशोक को दूसरे के शोक का क्या अनुभव होगा?

केतक = केवड़ा	तीनो में कॉटे होते हैं अतः कल्पना
केतकि = केतकी	की कि यह सब तीक्ष्ण स्वभाव
जाति = जायफल	के है, इससे पूछते डरते है

यह सब बुद्धि का चमत्कार भले ही हो, रसात्मक काव्य (कविता) नहीं है।

सुगंध को केशव कहेंगे सौगन्ध तो भला कौन अर्थ लगा सकेगा (गोदावरी वर्णन), कजज (ब्रह्मा), हरिमंदिर (समुद्र, वैकुण्ठ), विषमय (जलमय, मवाल) इसी प्रकार की चेष्टाएँ हैं।

सच तो यह है कि केशव का सारा काव्य शब्द-कोप पर और भाव की वक्रता पर खड़ा है। पहले का रूप है श्लेष, दूसरे का विरोधाभास। श्लेष के युक्त विरोधाभास से कितने ही उदाहरण पग-पग पर मिलेंगे। गोदावरी अंग को ही लीजिए। कहते हैं—

निपट पतिव्रत धरणी (यहाँ पतिव्रत-धारण का अर्थ है समुद्र विमुख रहना) निगति सदा गति सुनिये। अगति महा-पति गुनिये (यहाँ सारी कल्पना 'गति' 'निगति' 'अगति' पर आश्रित है। निगति = जिसकी गति नहीं (पापी), गति (मोक्ष), अगति = गतिहीनता, स्थिरता, निश्चलता। गोदावरी की यह वैचित्रता है कि जिसकी गति नहीं हो सकती उसको गति देती है और अपने पति को गति-रहित रखती है (विरोधाभास)।

सं० निजेच्छया (निज इच्छा से)

सम्भोग = भोग-विलास की वस्तुएँ

सविलास = विलास-पूर्वक, भली भाँति, सहज ही।

इस प्रकार के अनेक स्वतंत्र और परंपरारहित प्रयोग केशव के काव्य को कठिन बना देते है। वास्तव में, अपनी भाषाशैली के कारण ही उन्हे "कठिन काव्य के प्रेत" कहा गया है।

भाषा-काठिन्य का एक कारण यह भी है कि केशव ने ब्रज-भाषा में अपनी प्रांतीय बोली बुंदेलखंडी का भी बड़ा पुट दे

दिया है—शब्द-कोष का ही नहीं, मुहावरों का भी, जिनकी आत्मा से ब्रजभाषा किंचित भी परिचित नहीं है। बाबू भगवान-दास के अनुसार कुछ बुन्देली शब्द ये हैं—पंचम (अर्थ, बुन्देला), खारक (छोहारा), मरुकर (कठिनता से), चोली (पान रखने की पिटारी), छीपे (छुपे), छंदी (तंग गली को कहते हैं जो एक ओर से बन्द हो), स्यो (सहित), उपदि (अपनी पसंद से), घोरिला (खूँटी), वरँगा (कड़ी), हुगई (ओसारा), गेहुए (तकिया), गलसुई (गाल के नीचे रखने का छोटा तकिया), सुख (सहज ही) गौरमदाइन (इंद्रधनुष)। इसके अतिरिक्त स्वयं ब्रजभाषा के अत्यंत अपरिचित शब्द नारी (समूह), ऐलो (आड़) जैसे उनकी कविता को असाधारण बना देते हैं। विदेशी शब्द कम हैं और उन्हें तद्भव रूप में ही ग्रहण किया गया है।

✓ भाषा के बाद शैली पर विचार करना समीचीन होगा। शैली की दृष्टि से तो अनेक दोष हम गिना सकते हैं। अपने ग्रंथों में दोनों के जितने उदाहरण गिनाये हैं, वे सब उनकी कविता में ही निकाले जा सकते हैं। उन्होंने अधिकांश स्थलों पर संस्कृत के भावों और विचारों का अनुवादमात्र किया है और समास-पद्धति को विशेष रूप से अपनाने की चेष्टा की है—छंद भी छोटे-छोटे चुने हैं और यह प्रयत्न भी किया है कि इन छोटे छंदों के गागर में ही सागर भर दिया जाय। इसका फल यह हुआ कि उनका बहुत बड़ा काव्य "असमर्थ" दोष से दूषित है। वे कहते हैं —

पानी पावक पवन प्रभु, ज्यौं असाधु त्यौं साधु

कहना यह है कि पानी, पावक, पवन और प्रभु साधु और असाधु दोनों से समान ही व्यवहार करते हैं, परन्तु "ज्यौं असाधु त्यौं साधु" कहने से इस बात का कोई अर्थ नहीं निकलता

स्मी प्रकार कहीं-कहीं शब्दों के अप्रसिद्ध अर्थों का भी प्रयोग
लता है जैसे—

विषमय = जलयुक्त

जोवन = पानी

ऐसे अर्थ केवल कोष के सहारे ही उपयोगी हो सकते है। क्षण और व्यंजना का तो केशव के काव्य में प्राचुर्य है जैसा म अन्यत्र भी कह चुके हैं। इस प्रकार केशव की काव्यशैली साधारण तत्त्वो पर खड़ी की गई है इसीसे वह प्रसाद-मुक्त लसी की काव्यशैलो की तरह जनता की वस्तु नही बन सकी है, बन ही सकेगी।

———

६

केशव के काव्य-सिद्धांत

केशव के काव्य-सिद्धांतों का अध्ययन करने के लिए हम पास उनके दो ग्रंथ हैं—कविप्रिया और रसिकप्रिया। इन ग्रं ने हिन्दी साहित्य को विशेष रूप से प्रभावित किया है, औ केशव के काव्य को समझने के लिए, वे भूमिका का काम सकते हैं; अतः उनका अध्ययन आवश्यक ही नहीं, अनिवा है। इस अध्याय में हम उन्हीं को अपने अध्ययन का विष बनायेंगे।

केशव की रस-सम्बन्धी मान्यताओं के लिए रसिकप्रि (रचनाकाल संवत् १६४८) महत्वपूर्ण है।

केशव के अनुसार श्रृंगार रस सब रसों का नायक है (१६)। केशव श्रृङ्गार को अपेक्षाकृत विस्तृत अर्थों में लेते हैं— रतिभाव का चातुर्य्यपूर्ण प्रकटीकरण जिसके भीतर कामशा वर्णित चातुर्य्य भी सम्मिलित है (१-१७)। श्रृङ्गार की दो जाति हैं १—संयोग २—वियोग। प्रत्येक दो प्रकार का है—प्रच्छन्न और प्रकाश प्रच्छन्न संयोग-वियोग वह है जिसे केवल प्रेमी-प्रेमिक और उनके समान ही उच्च कुल वाली सखी जाने (१-१६)। प्रकाश संयोग-वियोग वह है जिसे सब लोग जानें (१-२१)। इस प्रका हम इस तालिका द्वारा श्रृङ्गार का विभाजन प्रगट कर सकते हैं—
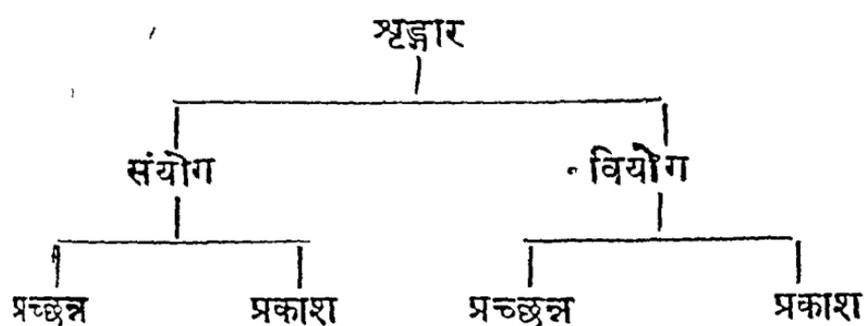
यहाँ केशव ने संयोग-वियोग को इस प्रकार विभाजित करके मौलिकता प्रगट करने की चेष्टा की है।

नायक

शृंगार के आलबन नायक-नायिका हैं। इसके विभाग वे ही हैं जो परपरा से चले आते हैं जैसे—अनुकूल, दक्षिण, शठ, धृष्ट। परन्तु चूँकि केशव पहले शृंगार को प्रच्छन्न और प्रकाश दो भेदों मे बाँट देते है इसलिए इनमे से प्रत्येक के भी दो भेद हो जाते हैं।

केशव ने नायक की परम्परागत विशेषताओं का साधारणीकरण कर दिया है। उनका नायक है—अभिमानी, अनासक्त(त्यागी), तरुण, कामशास्त्र प्रवीण, भव्य, क्षमी, सुन्दर, धनी, सभ्य (कुलीन रुचिवाला)। उसे रूप का अभिमान होगा। अनासक्त भाव से यह स्पष्ट है कि वह मधुकर-वृत्ति रखेगा। कामशास्त्र की प्रवीणता उसके लिए आवश्यक है। इस प्रकार उन्होने एक नई श्रेणी के नायक की ही सृष्टि कर डाली है। नायक के इस रूप की प्रतिष्ठा हो जाने पर ही उस काव्य की रचना हो सकती है जो रीतिकाल का गौरव है। केशव का नायक जनसाधारण से कुछ ऊँची श्रेणी का है, परन्तु वह वात्सायन के नागरिक जैसा सम्पन्न भी नहीं है। धीरे-धीरे कवियों ने उसे जनलोक में ला खड़ा किया यहाँ तक कि ग्रामीण नायक-नायिकाओं को भी महत्त्वपूर्ण स्थान मिलने

लगा और गँवारी-चित्रण चल पड़ा। नायक के लिए तरुण और कामशास्त्र-प्रवीण होना ही मात्र आवश्यक अंग रह गए।

अनुकूल नायक वह है जो परनारी के प्रतिकूल हो, अपनी स्त्री से ही प्रेम करे (२-३)। दक्षिण नायक की परिभाषा में सर्वमान्य परिभाषा से अंतर है, उसका चित्त चलायमान है, परन्तु वह पहली नायिका के भय के कारण ही दूसरी नायिकाओं से अधिक स्नेह नहीं चलाता (२-७)। केशव की मान्यता है कि वास्तव में नायक दूसरी नायिकाओं से भी सम्बन्धित है, परन्तु उसकी प्रीतिरीति पहली से इस प्रकार होती है कि वह अविश्वास नहीं करती (२-१०)। शठ नायक मन में कपट रखता हुआ भी मुँह से मीठी बातें करता है। दक्षिण नायक को उस नायिका से भी प्रीति है, इसे नहीं है, झूठे ही दिखाता है। उसे अपराध का भी डर नहीं है (२-११)। धृष्ट नायक को गाली और मार खाने में भी लाज नहीं रहती (१-१४)। केशव की दक्षिण नायक की परिभाषा से यह स्पष्ट है कि वे यह मानते हैं कि एक पत्नीव्रत असंभव बात है। यह बात उस युग की सामाजिक स्थिति पर प्रकाश डालती है जब कुछ श्रेणियों में अनाचार इतना बढ़ गया था कि पति अपनी पत्नी से संतुष्ट न होकर वारांगनाओं और परकीयाओं के लिए आग्रहपूर्ण प्रयत्न करता था। साधारण जनता में यह कुप्रवृत्ति भले ही न हो, केशव जिस वातावरण में रह रहे थे, उसमें एकपत्नीव्रत नायक की रति-असमर्थता का ही उदाहरण मानी जाती होगी।

नायिका

नायिका का विभाग कई प्रकार से है। जाति की दृष्टि से वह पद्मिणी, चित्रिणी, शंखिनी अथवा हस्तिनी है। इनके भेद कामशास्त्र के अनुसार ही है, कोई विशेप अन्तर नहीं

१-१२)। वास्तव में यह जाति-भेद कविता का विषय नहीं
इस पर अच्छी कविता ही हो सकी है, परन्तु रीतिकाव्य
कदाचित् केशव द्वारा ही इसकी रूढ़ि पड़ गई और रसग्रन्थ
न नायिकाओं के उदाहरण और लक्षण आवश्यक हो गये।
कृत रस-ग्रन्थों में इनका कोई महत्व नहीं है।

नायक के दृष्टिकोण से नायिका के ३ भेद हैं—स्वकीया,
कीया और सामान्या। सामान्या (वारांगना) का काव्य में
न वर्जित है, अतः केशवदास ने उसका लक्षण और उदाहरण
लिखा। स्वकीया और परकीया तक ही दृष्टि सीमित रखी।
कीया निज पत्नी है, परन्तु केशवदास उसकी परिभाषा दूसरी
ार से करते है—"जो मन, वच, क्रम से आराधै। सम्पत्ति,
ात्ति और मरण मे नायक मे ही जिसकी रति रहे।" स्पष्ट
यह "स्वकीया" का विस्तार है। यह आवश्यक नही है कि
अपनी विवाहिता हो, प्रेमिका-मात्र ही रह सकती है। पर-
या के लक्षण का भी विस्तार है—"सबतैं पर परसिद्ध जो ताकी
या जु होय ६७।" यही नायक "सबतै पर" है जो भ्रमरवत्
ाचरण करता है। वह विवाहिता होगी, तो "नूढ़ा", और
विवाहिता होगी तो "अनूढ़ा"।

पहले इस स्वकीया नायिका के भेदों को लेकर चलते हैं।
नका वर्गीकरण इस प्रकार है—

नववधू मुग्धा

जिसकी द्युति दिन-दिन दूनी बढ़े (३-१८)।

नवयौवन-भूषिता

यौवन का प्रवेश हो और बालावस्था छूटती जाये। यह नायिका वय:संधि की अवस्था मे है (३-२०)।

अनंगा

इसे सद्य:यौवना समझना चाहिए । यौवन के सब चातु जाने, परन्तु करे बालिका-विधि से (३-२२)।

लज्जाप्रायरति

जो लाजयुक्त सुरति के कारण पति से बैर बढ़ावै (३-२४) स्पष्ट है कि उपरोक्त नववधू मुग्धा तो सामान्य नववधू ही है

अन्य तीन भेद रति-भाव के क्रमिक विकास की दृष्टि से गढ़े गये हैं। मुग्धा नायक के पास नहीं सोती। सखी लेकर सोती है तो सुख नहीं मिलता (३-२६)। वह सपने में भी सुख मान-कर रति नहीं करती। नायक को छलबल का प्रयोग करना पड़ता है। उसका मान साधारण भय दिखाने से ही छूट जाता है (३-२८, ३०)।

आरूढ़ यौवना मध्या

पूर्ण यौवना है (३-३३)।

प्रगल्भ-वचना

बोलने मे उलाहना दे, त्रास दिखाये, शका न करे (३-३५)।

प्रादुर्भूत मनोभवा

जो काम कलाविद हो गई हो और स्वयं कामैच्छा से भरी रहे (३-३७)।

सुरति विचित्रा

जो इस प्रकार विचित्र रति करै जिसे वर्णन करना कठिन हो, परन्तु सुनने मे आनन्द हो।

यहाँ पर कवि १४ रति, १६ शृङ्गार और सुरतांत का वर्णन करता है। १६ शृङ्गार है—१ मज्जन, २ अमलत्रास, ३ जानक, ४ केश सँवारना, ५ अंगराग, ६ भूषण, ७ मुखवास, ८ कज्जल ९ १०मीठा बोलना, ११ हँसना, १२, १३ सुन्दर चलना, देखना, १४ पतिव्रत पालना, १५ मुखराग, १६ लोचन-विहार। चौदह रतियों मे से सात रति वास्तव मे ७ वहिर्रति है—आलिगन, चुम्बन, स्पर्श, मर्दन, नखदान, रददान, अधरदान। सात अंतररति हैं। वास्तव मे ये सात आसन है—स्थिति, तिर्यक्, सम्मुख, विमुख,

अधः, ऊर्द्धः, उत्तान। सुरतांत सम्बन्धी एक पद देकर केशव ने काव्य में इसका प्रयोग भी समीचीन स्वीकार कर लिया है, यद्यपि उन्होंने सुरतारंभ और सुरति को स्थान नहीं दिया है।

मध्या के ३ भेद और हैं – धीरा, अधीरा, धीराधीरा। धीरा व्यंग लिए कोप करती है, अधीरा टेढ़ी बात कहे, परन्तु उसमें व्यंग न हों, धीराधीरा व्यंग-अव्यंग दोनों से काम लेकर उलाहना दे (३-४६)।

प्रौढ़ा के ४ भेद हैं (३-५१)।

समस्त रसकोविद

काम-रसकोविद है और रस की खान है। उससे सुख साधन की सिद्धि होती है (३-५२)।

विचित्र विभ्रमा

जिसकी दीप्ति देखकर ही दूती उसे प्रिय से मिला दे (३-५४)।

अक्रामति

जो मन-वचन-क्रम से अपने प्रिय को वश में कर ले (३-५६)।

लब्धापति

पति और कुल के सब मनुष्यों से कानि करे (३-५८)। प्रौढ़ा के ३ भेद और हैं—धीरा, अधीरा, धीराधीरा (३-६०)। जो आदर के बीच अनादर करे और प्रगट में हित करे, वह धीरा है। जो प्रकृति को छिपाये रखे, नायक के हँसाने पर हँसे, नायक के बुलाने से बोले, स्वयम् न बोले आदि, वह आकृति गुप्ता धीरा है। पति के अपराध को गिन कर जो हित न करे वह अधीरा है और जो मुख से रूखी बात कहे, जिसके मन मे प्रिय की भूख हो, वह धीराधीरा है।

परकीया के दो भेद हैं—ऊढ़ा, अनूढ़ा (विवाहिता और अविवाहिता)। उनके विलास गूढ़ और अगूढ़ है (३-६६)। अनूढ़ा गूढ़ बात किसी से नहीं कहती। ऊढ़ा अंतरंग सखी से गूढ़ बात कह देती है, बहिरंग सहेली से अगूढ़ कहती है (३-७२)।

दर्शन के ४ ढङ्ग हैं—साक्षात, चित्र, स्वप्न और श्रवण। इनमे से प्रत्येक में मनोदशा का क्या सूक्ष्म अंतर हो जाता है, इसे उदाहरण से प्रकट किया गया है।

दंपति की चेष्टा

सखी बीच में होती है, उसी के द्वारा प्रणय-निवेदन चलता है (५-१)। नायिका इस प्रकार व्यवहार करती है कि प्रीति प्रगट न हो (जाना जाय कि प्रिय से प्रेम नहीं है), जब प्रियतम अन्यत्र देखने लगे, तब उसे देखे। जब यह जाने कि नायक उसे देख रहा है तो सखी से चिपट जाय। झूठे ही हँस-हँस पड़ती हो। सखी से बात करती हुई किसी बहाने प्रियतम को अपने अंग दिखलाती है। कहीं चेष्टा प्रच्छन्न होती है, कहीं प्रकाश (५—५,६,७,८) प्रेम की बढ़ी हुई अवस्था मे नायिका स्वय दूतत्व को तैयार होती है। पत्री आदि के द्वारा स्वयं-दूतत्व करती है या उसका मानसिक संकल्प करती है। यह स्वयं-दूतत्व प्रकाश हो सकता है या प्रच्छन्न। अब नायिका प्रीति को बहुत तरह जता कर लाज तज कर प्रियतम से मिलती है (५-२०)। अनूढ़ा लाज से स्वयं तो नहीं बोलती, उसकी सखी उसकी दशा जनाती है (३-२३)।

प्रथम मिलन

प्रथम मिलन-स्थान के सम्बन्ध मे केशव का मत है कि निम्न-लिखित स्थान हो सकते है—दासी का घर, धाई का घर, सहेली का घर, सूना घर। प्रथम मिलन किसी भी समय संभव है—

परन्तु रात, विशेपतः मेघाच्छन्न रात, इसके लिए विशेप उपयुक्त है। मानसिक दशा और परिस्थितियाँ भी अनेक हैं—भय, उत्सव, व्याधि का बहाना, न्यौते के मिस, वन विहार, जल-विहार।

भाव-विलास

प्रेम की जो बात मुख, आँख, वचन से निकलती है, उसे भाव कहते हैं (६-१)। भाव पाँच प्रकार के हैं— विभाव अनुभाव, स्थायी, सात्विक, व्यभिचारी (६-२)। जिनसे अनेक रस अनायास ही प्रगट हो, वे विभाव है (३)। इसके दो भेद हैं—आलंबन, उद्दीपन। परिभाषा इस प्रकार है—

जिन्हें अतन अवलंबई, ते आलंबन आन
जिसके दीपति होत है ते उद्दीप बखान

केशवदास ने आलंबन की सूची इस प्रकार दी है—

दंपति जोवन रूप जाति लक्षण युत सखिगन
कोकिल कलित बसन्त फूलि फल दलि अलि उपवन
जलयुत जलचर अमल कमल कमला कमलाकर
चातृक मोर सुशब्द तड़ित घन अम्बुद अंबर
शुभ सेज दीप सौगन्ध गृह पान खान परधानि मनि
नव नृत्य भेद वीणादि सब आलंबन केशव बरनि

उद्दीपन है

अविलोकन, आलाप चार, रंमन नख रददान
चुंबनादि उद्दीपिये मर्दन परस प्रवान

अनुभाव

अनुभाव आलंबन-उद्दीपन के अनुकरण हैं अर्थात् भाव-अनुभाव के बाद आते है (६—८)।

ायी भाव

रति, हास्य, शोक, क्रोध, उछोह, भय, निदा, विस्मय (६-६)।

ात्विक भाव

स्तभ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, कंप, वैवर्ण, अश्रु, प्रलाप।

व्यभिचारी भाव

ऐसे भाव है जो विना नियम ही प्रगट होते है—ये है निर्वेद ग्लानि, शका, आलस्य, दैन्य, मोह, स्मृति, धृति, क्रीड़ा, चपलता, श्रम, मद, चिता, क्रोध, गर्व, हर्ष, आवेग, निदा, नींद, विवाद, जड़ता, उत्कंठा, स्वप्न, प्रबोध, विपाद, अपस्मार, मति, उग्रता, आशा, तर्क, अति व्याधि, उन्मा, मरण, भय।

हाव

शृङ्गार-चेष्टा को हाव कहते है (६-१५)। हाव हैं—हेला, लीला, ललित, मद, विभ्रम, विहित, विलास, किलकिंचित, विच्छित्ति, विव्वोक, मोट्टाइत, कुट्टमित, बोध।

१—हेला—लोकलाज छोड़ प्रियतम को देखे (१८)।

२—लीला—जहाॅ प्रियतम प्रिया का रूप वना ले, प्रिया प्रियतम का रूप वना ले (२१)।

३—ललित—बोलना, हॅसना, देखना, चलना, सब का यथार्थ (जैसा हो, ठीक वैसा ही) वर्णन ललित है (२४)।

४—मद—पूर्ण प्रेम के प्रताप से गर्व और तरुणपन जनित विकार से ही मद का रूप वनता है (२७)।

५—विभ्रम—दर्शन-सुख आदि में लगे रहने के कारण जहाँ वस्त्राभूषण उल्टे पहर लिये जायें, या अटपटा काम हो (६०)।

६—विहित—बोलने के उपयुक्त अवसर पर लाज के कारण न बोल सके (३३)।

७—विलास—खेलने, बोलने, हँसने, चितवन, चाल में जहाँ जल-थल आदि मे विलास उपजे (३६)।

८—किलकिंचित—श्रम, अभिलाप, सगर्व स्मिति, क्रोध, हर्ष, भय एक ही साथ जहाँ उपजे (३६)।

९—विव्वोक—रूप और प्रेम के गर्व से जहाँ कपट अनादर होता हो (४२)।

१०—विच्छित—भूषण पहरने से जहाँ अनादर होता है (४५)

११—मोट्टाइत—जहाँ हेला-लीला से सात्विक भाव उत्पन्न हो और उसे बुद्धि से रोकने के प्रयत्न किये जाये, वहाँ मोट्टाइत भाव है (४८)।

१२—कुट्टमित—जहाँ केलि में कलह हो या कलह में केलि हो, कपट भाव रहे (५२)।

१३—बोध—जहाँ गूढ़ार्थ हों, बोध सरल न हो, ऐसे प्रकार से मन का भाव प्रगट करना (५५)। यह एक प्रकार का कूट समझिए।

नायिका-भेद

नायिका ८ प्रकार की होती है—(१) स्वाधीनपतिका, (२) उत्कला (उत्कंठिता), (३) वासकशय्या, (४) अभिसंधिता (कलहंतारिता), (५) खंडिता, (६) प्रोषित प्रेयसी, (७) लब्धा-विप्रा, (८) अभिसारिका।

१—स्वाधीनपतिका—पति नायिका के गुण में बँधा रहे।

२—उल्का (उत्कला, उत्कंठिता)—किसी कारण से प्रियतम घर नही आया, इस शोच से जो शोचित हो।

३—वासकसज्जा—प्रियतम के आने की आशा से जो द्वार की ओर देखती रहे।

४—अभिसंधिता—मान मनाते समय नायक मानिनी का अपमान करे और उसे छोड़कर चला जाय, जिससे उसे वियोग का दुख हो।

५—खंडिता—प्रियतम ने आने को कहा, प्रातः आये, रात को सौत के घर रहे थे, अब बहुत तरह बात बनाते है।

६—प्रोषितपतिका—जिसका प्रियतम अवधि देकर किसी कार्य निमित्त बाहर जाये।

७—विप्रलब्धा—नायक ने दूती को संकेत स्थान बताकर नायिका को लिवा लाने को कहा, भेजा। जब वह संकेत में आई तो आप नही मिला।

८—अभिसारिका—प्रेम की प्रबलता के कारण स्वयं जाकर मिलती है। इसके बाद स्वकीया, परकीया, सामान्या के अभिसार के भेद का वर्णन है जो महत्वहीन है। यह इस प्रकार है—

अति लज्जा पग डग धरै चलत वधुन के संग
स्वकिया को अभिसार यह भूषण भूषित अंग
जनी सहेली शोभही बंधु वधू संग चार
मग में देइ बराइ डग, लज्जा को अभिसार
चकित चित्त साहस सहित नील वसनयुत गात
कुलटा संध्या अभिसरै उत्सव तम अधिरात
चहूँ ओर चितवै हँसै, चित्त चोरै सविलास
अंगराग रंजित नितहि भूषण भूषित भास

स्वकीया के ३ भेद है—उत्तम, मध्यम, अधम।

(१) उत्तमा—अपमान से मान करती है और नायक के मान करते ही मान छोड़ देती है।

(२) मध्यमा—लघु दोष से ही मान करने लगती है, बहुत प्रयत्न से ही छोड़ती है।

(३) अधमा—जो विना प्रयोजन और बारम्बार रूठे। इनके अतिरिक्त देशकाल-वय से भी नायिकाओं के अनेक भेद किये जा सकते हैं (४५)। अंत में, केशव अगम्या का भी वर्णन कर देते हैं। ये अगम्या हैं—सम्बन्धिनी, मित्र-पत्नी, ब्राह्मण-पत्नी, जो पालन-पोषण करे उसकी पत्नी, अधिक ऊँची जाति की नायिका, न्यून जाति की चांडालादि जाति की नायिका, विधवा और पूजिता।

विप्रलंभ

जहाँ नायक-नायिका मे वियोग है, वे एक स्थान पर नहीं हो सकें उसे विप्रलंभ शृंगार कहेंगे (८-१)। यह चार प्रकार का है—१—पूर्वानुराग, २—करुण, ३—मान ४—प्रवास। पूर्वानुराग की केशव की परिभाषा अस्पष्ट और असम्पूर्ण है—

देखति ही द्युति दम्पतिहि उपज परत अनुराग
बिन देखे- दुख देखिये, सो पूरव-अनुराग
(८-३)

मानपूर्ण प्रेम के प्रताप से अभिमान के कारण उत्पन्न होता है। इसके ३ भेद है—लघु, मध्यम, गुरु। लघु मान उस समय उपजता है जब नायिका नायक को अन्य स्त्री को देखता हुआ देख लेती है या सखी से सुनती है। नायिका प्रिय का कहा नहीं करती, उससे लाज नहीं मानती। मध्यम मान में नायिका नायक को किसी अन्य स्त्री से बात करता देखती है। प्रियतम मानता हो, परन्तु हार जाये और अन्त मे उसके हृदय मे भी मान उत्पन्न हो जाय। गुरु मान मे अन्य नारी के रमण के चिन्ह देखे या नायक को उसका नाम लेता हुए सुने। लोक-मर्यादा का उल्लङ्घन करके जहाँ नायिका प्रियतम को कुछ बात कहती है, वहाँ गुरुमान नायक में

उत्पन्न होता है (प्रकाश ६)। मान-मोचन के छः ढंग है—साम, दाम, भेद, प्रणति, उपेक्षा, प्रसंग-विध्वंस, दंड।

(१) साम—किसी ढंग से मन मोह के मान छुड़ा दे।

(२) दाम—छल से, कुछ देकर, वचन-चातुरी से मोह कर। जो लोभ से मानिनी मान छोड़ दे, उसे गणिका मानवती कहेंगे।

(३) भेद—सखी को सुख देकर अपना लेवे। तब मान छुड़ाए।

(४) प्रणति—अति प्रेम से काम-वशीभूत होकर अपना अपराध जानकर प्रियतम नायिका के पाँव पड़े। परन्तु यदि नायक ने अपराध नहीं किया हो और काम-वशीभूत भी नहीं हो, तो इस प्रकार की प्रणति से रसहानि होगी।

(५) उपेक्षा—जहाँ मान की बात छोड़ कर कुछ और प्रसंग चला दिया जाय, जिससे मान छूट जाय।

(६) प्रसंग-विध्वंस—भय से नायिका के चित्त मे भ्रम पड़ जाय और मान की बात भूल जाय।

केशव ने दंड को छोड़ दिया है। वह अवांच्छनीय है। वे सहज उपाय बताते हैं—

> देशकाल बुधि वचन तें कलरवनि कोयल गान
> शोभा शुभ सौगध ते, सुख ही छूटत मान
>
> (प्रकाश, १०)

करुण—केशव की करुण-रस की परिभाषा स्पष्ट नहीं है।

प्रवास—प्रियतम किसी कार्य से परदेश चला जाय।

विरह की दस दशाएँ कही गई है—१ अभिलाषा, २—चिंता, ३—गुणकथन, ४—स्मृति, ५—उद्वेग, ६—प्रलाप, ७—उन्माद, ८—व्याधि, ९—जड़ता, १०—मरण।

(१) अभिलाषा—शरीर से मिलन की इच्छा

(२) चिंता—कैसे मिले, कैसे नायक वश में हो।

(३) गुणकथन—"जहँ गुणगण मणि देहि द्युतिवर्णन वचन विशेष"

(४) स्मृति—और कुछ अच्छा न लगे, सब काम भूल जाये, मन मिलने की कामना करे।

(५) उद्वेग—जहाँ सुखदायक अनायास दुःखदायक हो जाये।

(६) प्रलाप—मन भ्रमता रहे, तन-मन में परिताप हो, परन्तु वचन प्रियपक्ष में कहे। केशव का यह लक्षण विचित्र है। वैसे शास्त्रकार अनर्गल वचन को या अनर्थक कथन को प्रलाप कहते हैं।

(७) उन्माद—कभी रोये, कभी हँसे, कभी इकटक देखे, कभी झटके से उठकर चल दे।

(८) जड़ता—जहाँ सुध-बुध भूल जाय, सुख-दुख समान माने

(९) व्याधि—अंग-अग विवर्ण हो जाय, ऊँची साँस ले, नेत्रों से नीर बहे, परलाप हो।

(१०) मरण—छलबल से भी नायक की प्राप्ति न हो, तो पूर्ण प्रेम-प्रताप से मरण को प्राप्त हो। मरण का केवल उल्लेखमात्र ही हो सकता है—"केवल निमित्त मात्र"। इसीलिए केशव ने उदाहरण नहीं दिया—

मरण सुकेशवदास पै बरन्यों जाइ निमित्त
अजर अमर तासों कहैं कैसे प्रेम चरित्र

सखी

सखियाँ ये होगी—धाय, दासी, नायन, नटी, पड़ोसिन, मालिन, सुनारी, बरहनी, शिल्पिनी, चुरिहारनी, रामजनी, संन्यासिनी, परवा की स्त्री, नायक और नायिका इन्हे ही सखी बनाते है (प्रकाश, १२) सखियों के काम ये है—शिक्षा, विनय, मनाना

मिलन के लिए शृङ्गार करना, उलाहना देना (प्रकाश, १३)

अन्य रस

हास्यरस—जहाँ नैत्रो मे या वचन मे कुछ विचित्रता लाकर मोह उत्पन्न किया गया हो। हास्यरस के भेद है—मंदहास, कलहास, अतिहास, परिहास।

(१) मंदहास—नेत्र, कपोल, दंश और ओष्ठ थोड़े खुलें।

(२) कलहास—जहाँ कोमल निर्मल मनमोहक विलास हों और कुछ कलध्वनि भी निकले।

(३) अतिहास—जहाँ निःशंक हँसे, आधा वचन कहकर फिर हँस पड़े।

(४) परिहास—यह नायक-नायिका मे नहीं, परिजनों में होगा जो उनकी मर्यादा छोड़ कर हँस पड़ेंगी।

करुणा—प्रिय के कष्टो को देखकर (विप्रिय कारणते) करुणरस की सृष्टि होती है।

रौद्र—क्रोध होने से चित्त उग्रता को प्राप्त होता है।

वीर—उत्साह से उत्पन्न होता है।

भयानक—जिसके देखने-सुनने से भय उपजे।

वीभत्स—जिसके देखने, सुनने से तन-मन उदास हो, ऐसा निंदामय कथन आदि।

अद्भुत—जिसे देख-सुनकर अचंभा हो।

समरस—सबसे मन उदास होकर एक ठौर रहे (सबसे निर्वेद, नायक या नायिका मे अनुरक्ति, १४)

अनरस—विरोधी रसो के एक साथ आने पर "अनरस" हो जाता है। इसके पाँच भेद है—प्रत्यनीक, नीरस, विरस, दुःसंधान, पात्रादुष्ट (१) प्रत्यनीक—जहाँ शृंगार-वीभत्स-भयानक-रौद्र करुण मिले (विरोधी रस), (२) नीरस—जहाँ "कपट" हो, [illegible] से मिले, मन मे कपट रखे, (३) विरस—जहाँ शोक में

भोग अथवा भोग में शोक का वर्णन हो, (४) दुःसाधन—जहाँ एक अनुकूल हो, दूसरा प्रतिकूल, (५) पात्रादुष्ट—जहाँ बिना विचार जैसा सूझा रख दिया गया हो। जहाँ जैसा न होना चाहिये, वैसा पुष्ट करे। केशव का मत है कि निम्न रसों में वैर है—वीभत्स-भय, शृंगार-हास, अद्भुत-वीर, करुण-रौद्र।

वृत्तियाँ

वृत्तियाँ ४ हैं—कौशिकी, भारती, आरभटी, सात्त्विकी। जहाँ करुण, हास्य, शृंगार हो और सरल भाव हों वहाँ कौशिकी है। 'जहाँ वीर, अद्भुत, हास का वर्णन हो और शुभ अर्थ हो, वहाँ भारती वृत्ति है। जहाँ रौद्र, भयानक, वीभत्स हो, पद-पद पर यमक हो, वहाँ आरभटी है। जहाँ अद्भुत, वीर, शृंगार, समरस-समान हो, वहाँ सात्त्विकी है।'

अलंकार

केशव के अलंकार सम्बन्धी सिद्धान्तों को समझने के लिए हमारे पास उनका ग्रंथ कविप्रिया है जिसमें इस विषय पर विस्तार-पूर्वक लिखा गया है। कविप्रिया पाँचवे प्रकाश के १ले छंद में ही केशव लिखते हैं—

> जदपि सुजाति सुलक्षणा सुबरन सरस सुवृत्त
> भूषण बिनु न विराजई कविता वनिता मित्त

अर्थात् "यद्यपि कविता ध्वनिमय हो, सुस्पष्ट लक्षणा-युक्त हो, रसानुकूल सुन्दर वर्ण भी उसमें हो, रस की पूरी सामग्री भी उसमें हो, तथा सुन्दर छन्द में कही गई हो, पर बिना अलंकार के शोभित नहीं होती।"

स्पष्ट है कि केशव अलंकार को ही प्रथम स्थान देते हैं

प्रकार ध्वनि, व्यंग, गुण और रस को भी आवश्यक अंग समझते हैं। वे अलंकारवादी है।

परन्तु केवल अलंकारवादी कहने से काम नही चलेगा। केशव ने 'अलंकार' के अर्थों का विस्तार किया है। उन्होंने अलंकार के दो बड़े भेद किये है—साधारण या सामान्य और विशेष। पहली श्रेणी केशव की मौलिक कल्पना है। साधारण परिभाषा मे हम जिन्हें अलंकार मानते है, वे दूसरी श्रेणी मे आते हैं। परन्तु केशव ने साधारण अलंकार को कम महत्त्व नहीं दिया है। तीन प्रभावों में उन्ही का वर्णन है वे सामान्यालंकार के ४ भेद करते हैं—वर्ण अर्थात् रंगज्ञान, वर्ण्य अर्थात् आकारज्ञान, भूमिश्री अर्थात् प्रकृतिक वस्तुओ का ज्ञान और राज्यश्री अर्थात् राजा सम्बन्धी वस्तुओ का ज्ञान। अलंकार के अर्थो का विस्तार करते हुए केशव ने "कविशिक्षा" सम्बन्धी शास्त्र को भी उसके अन्तर्गत रख दिया है। वास्तव मे 'अलंकार' से केशव काव्य-परिपाटी मे चले आते हुए प्रयोग या कविकौशल का अर्थ ले रहे हैं। उन्होंने अलकारो को भी "कविरूढ़ि" समझा है, जिनके प्रकार को जानना उतना ही आवश्यक है जितना कविसत्य और साधारण रूप से कविशास्त्र को। केशव के काव्य के अध्ययन के लिए ये प्रभाव महत्वपूर्ण है, इसलिए कि इनमे उन्होंने संस्कृत की पुरानी काव्य-परम्पराओ का पालन करते हुए हिंदी में काव्य परम्परा चलाने की चेष्टा की है और स्वयं अपनी मान्यताओं से प्रभावित हुए है।

'विशेपालंकार' के अन्तर्गत केशव ने ३७ अलंकार रखे हैं—१ स्वभावोक्ति, २ विभावना, ३ हेतु, ४ विरोध, ५ विशेप, ६ उत्प्रेक्षा, ७ आक्षेप, ८ क्रम, ९ गणना, १० आशिन, ११ प्रेमा, १२ श्लेप, १३ सूक्ष्म, १४ लेश १५ निदर्शना, १६ ऊर्जस्वा, १७ रस, १८ अर्थान्तर-न्यास, १९ व्यतिरेक, २० अपन्हुति, २१ उक्ति, २२ व्याजस्तुति, २३

व्याजनिन्दा, २४ अमित, २५ अर्थोक्ति, २६ मुक्त, २७ समाहित, २८ सुसिद्ध, २९ प्रसिद्ध, ३० विपरीत, ३१ रूपक, ३२ दीपक, ३३ प्रहेलिका, ३४ परवृत्त, ३५ उपमा, ३६ यमक, ३७ चित्र। केशव ने इन्हीं को 'विशिष्टालंकार' या 'विशेषालंकार' कहा है। मुख्य अलंकार यद्यपि ३७ माने गये हैं, परन्तु भेद-प्रभेद से वे अनेक हो जाते हैं, जैसे—

(१) विभावना के दो भेद (२)

(२) हेतु के तीन भेद—सभाव हेतु, अभाव हेतु और सभावाभाव हेतु (३)

(३) विरोध का एक भेद विरोधाभास है।

(४) आक्षेप के अनेक भेद हैं

काल-भेद ३—भूत प्रतिशेध, भावी प्रतिशेध, वर्तमान प्रतिशेध। प्रकार-भेद ८—प्रेम, अधैर्य, धैर्य, संशय, मरण, आशिस, धर्म, उपाय, शिक्षा।

(५) श्लेष के ७ भेद हैं—अभिन्न पद, भिन्न पद, अभिन्न क्रिया श्लेष भिन्न क्रिया-श्लेष, विरुद्ध क्रिया-श्लेष, नियम-श्लेष, विरोधी श्लेष।

(६) अर्थान्तरन्यास के ३ भेद हैं—युक्त, अयुक्त, अयुक्त-युक्त, युक्त-अयुक्त।

(७) व्यतिरेक के २ भेद हैं—युक्ति, सहज।

(८) उक्ति के ५ भेद हैं—वक्र, अन्य, व्यधिकरण, विशेष, सहोक्ति।

(९) रूपक के ३ भेद हैं—अद्भुत, विरुद्ध, रूपक-रूपक।

(१०) दीपक के २ भेद हैं—मणि, माला।

(११) उपमा के २२ भेद हैं संशय, हेतु, अभूत, अद्भुत, विक्रिय, दूषण, भूषण, मोह, नियम, गुणाधिक, अतिशय, उत्प्रेक्षित,

श्लेष, धर्म, विपरी, विपर्याय, लाक्षणिक, असंभावित, विरोध, माला, परस्पर, संकीर्ण ।

(१२) यमक के कई भेद हैं—आदि पद, द्वितीय पद, इत्यादि, अस्यमित, सस्यमेत इत्यादि, सुखकर (सरल), दुखकर (कठिन) इत्यादि ।

(१३) चित्र के भी कई भेद हैं ।

केशव के इस अलंकार-विवेचन पर उनके पांडित्य और उनकी अभिरुचि का प्रभाव है । उनकी कविता के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनकी प्रवृत्ति काठिन्य, चमत्कार और पांडित्य-प्रदर्शन की ओर थी । इसीलिए उन्हें यमक और श्लेष पसद हैं । पद-पद पर पाठक से इनकी भेंट होती है । उन्हें उपमा भी प्रिय है । अतः उन्होंने श्लेष-यमक और उपमा के कई-कई भेद किये और पांडित्य-चमत्कार की ओर अभिरुचि होने के कारण एक पूरा प्रभाव चित्रालंकार पर लिख डाला । यह चित्रालंकार 'चित्र-काव्य' ही है ।

दूसरी बात जो स्पष्ट होती है वह है उनकी अवैज्ञानिकता और उनका अलंकार-प्रेम । प्राकृत कवि की दृष्टि रस पर होती है, अलंकार पर नहीं, केशव अलकारवादी हैं । उन्होंने 'रस' को भी अलकार मान लिया है और उसे "रसवत्" नाम दिया है । रस-वर्णन की शैली नहीं है, न उसमें अभिव्यंजना का चमत्कार है । बुद्धि को नहीं छूता, हृदय को छूता है । अतः वह किसी भी तरह अलंकार नहीं होगा ।

> रसमय होय सुजानिये रसवत केशवदास
> नवरस को सक्षेप ही समुझौ करत प्रकास
>
> (११वाँ प्रभाव)

यह लिखकर उन्होंने प्रत्येक रस का एक रसवत् अलंकार गढ़

डाला है। वास्तव में रस-निरूपण अलकार के अंदर नहीं आता। कुछ लोग, जहाँ कोई रस अन्य रस का अङ्गीवत होकर आवे, उसका पोपण करे या उसकी शोभा वढ़ाये, वहाँ रसवत् अलकार मानते हैं, परन्तु केशव इनसे भी कई क़दम आगे हैं। रसवत् अलंकार के उदाहरण रस के उदाहरण मात्र हैं। इस 'रसवत्' अलंकार की उद्भावना से केशव एकदम अलंकारवादियों की श्रेणी में आ जाते हैं।

b तीसरी बात यह है कि केशव के कितने हो अलंकार वास्तव मे "अलंकार" परिभापा के अन्दर नहीं आते।

(१) स्वभावोक्ति कोई अलंकार नहीं है।

(२) केशव ने 'क्रम' अलंकार की परिभाषा स्पष्ट नहीं है। वह शृङ्खला या एकावली है।

(३) 'गणना' कोई अलकार नहीं है—उससे काव्य-तथ्यों या मान्यताओं का ही निरूपण होता है।

(४) 'आशिष' व्यर्थ की ठूँस है।

(५) इसी तरह 'प्रेमालंकार'।

(६) 'प्रहेलिका' अलंकार केशव की सूझ है, यह 'चित्रा· लंकार के अन्दर आ सकता था। 'सूक्ष्मालंकार' और 'लेशालंकार' भी नवीन उद्भावनाएँ हैं। इनमे 'प्रेमकूट' कहे गए हैं।

(७) 'ऊर्ज्व' अलंकार भी वास्तव में कोई अलंकार नहीं है।

कविप्रिया अलकार-ग्रन्थ है। परन्तु केशव ने अलंकार शब्द को विस्तृत अर्थ मे लिया है। उन्होने अलंकार के भेद यों किए हैं—
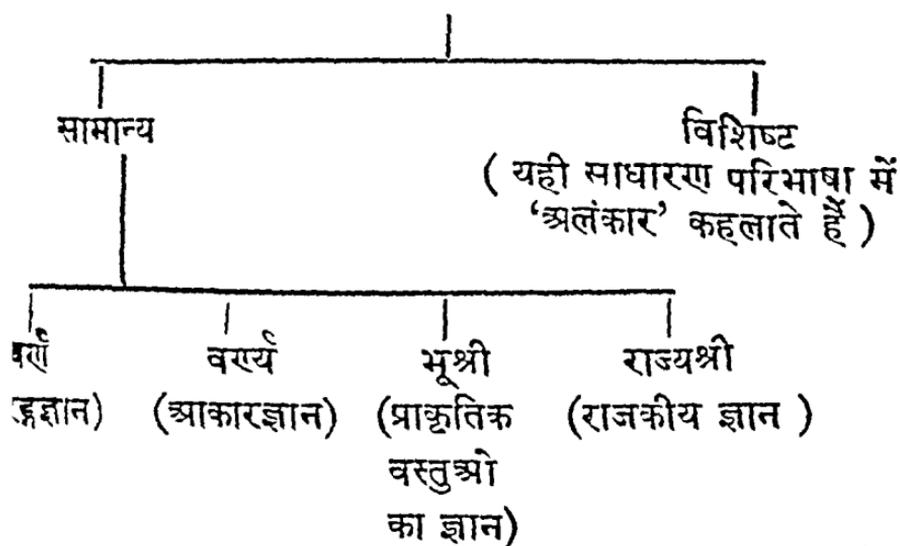
ामान्य अलङ्कार में कवि शिक्षा की अनेक बातें आ गई हैं, रन्तु उनसे भाषा-शैली अथवा काव्य गुणों का कोई सम्बन्ध हीं। उनके द्वारा काव्य-रूढ़ि आदि का ही ज्ञान प्राप्त होता है। र्णालङ्कार मे यह बतलाया गया है कि विशिष्ट-विशिष्ट रङ्ग कन-किन वस्तुओ के विशेषण अथवा प्रतीक है, जैसे श्वेत यश ा रङ्ग है। भूश्री अलङ्कार मे बताया है कि महाकाव्यांतर्गत वर्णित ाकृतिक वस्तुओ के वर्णन मे क्या-क्या बाते हैं—देश, नगर, वन, दी. आश्रम, सरिता, ताल, सूर्योदय, सागर, षट्ऋतु। राज्यश्री ालङ्कार के अन्तर्गत राज एवं राजा सम्बन्धी अनेक बातों का ान अपेक्षित है—(१) राजा, राजपत्नी, राजकुमार, पुरोहित, लपति, दूत, मंत्री (२) हय, गज, (३) मंत्र, पयान, संग्राम, ाखेट, जलकेलि, (४) स्वयंवर, विरह, मान, करुण विरह, वास विरह, पूर्वानुराग, सुरति। इस प्रसङ्ग से सामयिक राज-ीवन पर प्रभाव पड़ता है। मध्ययुग के अधिकांश कवि राजाओं के आश्रित थे, अतः राज्यश्री उनका प्रिय विषय है। ऊपर स्पष्ट है कि "राज्यश्री" मे प्रमुखता विलास एवं प्रेम को मिली है

जिनमें शृङ्गार के सभी अङ्ग हैं—संयोग और वियोग के सभी अंग हैं। राजाओं का अधिकांश जीवन इन्हीं प्रेमचक्रों में बीतता था, जो समय बचता उसके लिए जल-केलि, आखेट आदि आमोद-प्रमोद थे। थोड़ा बहुत संग्राम की परम्परा भी थी। हय-गज-युद्ध प्रमुखता प्राप्त किये थे। इनका वर्णन चल पड़ा था। वास्तव मे अधिकांश काव्य "यशगीत" मात्र था। 'राज्यश्री' अलङ्कार के अंगो को स्पष्ट करते हुए केशवदास ने अधिकांश उदाहरण राजा राम के बहाने लिखे हैं। यही बाद को "रामचन्द्रिका" में स्थान पा गये।

इस अलङ्कार-विवेचन के अतिरिक्त काव्योपयोगी अन्य ज्ञान का भी समावेश है, जैसे काव्य दोष, कवि की परिभाषा एवं विशेषता और कवि-भेद एवं कवि-रूढ़ियां। केशव के अनुसार कवि तीन प्रकार के हैं (१) उत्तम (हरिरसलीन), (२) मध्यम (जो मानव-चरित वर्णन करते हैं—'प्राकृत जन-गुनगान' तुलसी), (३) अधम (जो लोगो को प्रसन्न करने के लिए परनिंदात्मक कविता या भडौएं आदि लिखते है) कवि या तो सच बात को झूठ बनाकर बोलते हैं या झूठ बात को सत्य बना कर कहते है या कुछ बातो का नियमबद्ध वर्णन करते हैं। अन्तिम काम आचार्य कवियों का है। यह कवि-नियम या कविरूढ़ि की स्वीकृति है जिसका वर्णन सामान्यालङ्कार के अन्तर्गत किया गया है। जैसे स्त्रियो के अनेक शृङ्गार होने पर भी केवल १६ शृङ्गार ही कहे जाते है। ज्ञान को उज्ज्वल मानना, क्रोध को लाल।

९ दोष

केशव ने अनेक नवीन दोषो की भी सृष्टि की है, और उनके उदाहरण भी दिये हैं। उन्होने निम्नलिखित काव्य-दोष माने है—अन्ध, बधिर, पंगु, नग्न, मृतक, अगण, हीनरस, यतिभङ्ग, व्यर्थ, अयथार्थ, हीनक्रम, कर्णकटु, पुनरुक्ति, देवविरोध,

कालविरोध, लोक-विरोध, न्याय-विरोध, आगम (शास्त्र-विरोध);
रसदोष। इनमें से रसदोष का विस्तृत विवेचन रसिकप्रिया
१६वें प्रकाश मे हुआ है।

केशव के इन आचार्यत्व-प्रधान ग्रन्थो की अभी विस्तृत विवे-
चना नही हुई है, परन्तु फिर भी विद्वानो ने जो कुछ कहा है
उसमे बहुत सार है—"आचार्य मे जिन गुणो का होना आवश्यक
था, वे सब केशव मे वर्तमान थे। वे सस्कृत के भारी पंडित थे,
साहित्यशास्त्र के पूर्ण ज्ञाता थे, विद्वान थे, प्रतिभा-सम्पन्न थे
और इन्द्रजीतसिंह के मुसाहिब, मन्त्री और राजगुरु होने के
कारण ऐसे स्थान पर थे, जहाँ से वे लोगो मे अपने लिए आदर-
बुद्धि उत्पन्न कर सकते और अपने प्रभाव को बहुत गुरु बना
सकते। केशव को छ: पुस्तको मे से रामालंकृत-मञ्जरी, कवि-
प्रिया और रसिकप्रिया साहित्यशास्त्र से सम्बन्ध रखती हैं।
रामालंकृत-मञ्जरी पिंगल पर लिखी गई है, कविप्रिया अलंकार-
ग्रन्थ है और रसिकप्रिया मे रस, नायिकाभेद, वृत्ति आदि पर
विचार किया गया है। रामालंकृत-मञ्जरी अभी छपी नहीं है।
सुनते हैं, उसकी एक हस्तलिखित प्रति ओरछा दरबार के पुस्त-
कालय मे है।" "केशव ने कवि-शिक्षा का विषय कोटकाँगड़ा के
राजा माणिक्यचंद्र के आश्रय मे रहनेवाले केशव मिश्र के
अलंकारशेखर नामक ग्रन्थ के वर्णकरत्न (अध्याय) से लिया।
अलंकारशेखर कविप्रिया के कोई ३० वर्ष पहले लिखा गया
होगा। इसके वर्णकरत्न मे केशव मिश्र ने उन विषयों का वर्णन
किया है जिन पर कविता की जानी चाहिये, यथा भिन्न-भिन्न रङ्ग,
नदी, नगर, सूर्योदय, राजाओ की चर्या आदि। केशवदास ने
इन विषयो को वर्णालंकार और वर्ण्यालंकार इन दो भागो में
बाँटा है। वर्णालंकार के अंतर्गत भिन्न-भिन्न रंग लिये गए हैं और
शेष वर्णनीय विषय वर्ण्यालंकार मे है। अलंकार शब्द का यह

विलक्षण प्रयोग है। शास्त्रीय शब्द अलंकार के लिए केशवदास ने विशेषालंकार शब्द का व्यवहार किया है। इस प्रकार केशव ने अलंकार का अर्थ विस्तृत कर दिया जिसके वर्णालंकार, वर्ण्यालंकार और विशेषालंकार तीन भेद हो गये। विशेषालंकारों अर्थात काव्यालंकारों के विषय में केशवदास ने विशेषकर दंडी का अनुसरण किया है। अध्याय के अध्याय काव्यप्रकाश से लिये गए है। कहीं-कहीं राजानंक सम्यक से भी सामग्री ली है। विषय प्रतिपादन के साधारण ढंग को सामयिक परंपरा से प्राप्त करने पर भी प्रधान अंगो पर बहुत पुराने आचार्यों का आश्रय लेने का फल यह हुआ कि रस की मिठास का मूल अलंकारो की झनझनाहट के सामने कुछ न रह गया। साहित्यशास्त्र के साम्राज्य मे रस को पदच्युत होकर अलंकार की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी और रसवत् अलंकार के रूप में उसका छत्रवाहक होना पड़ा। पुराने रीतिवादी आचार्य इतनी दूर तक नहीं गये थे। वे रसवत् अलंकार नहीं मानते थे, जहाँ एक रस दूसरे रस का पोषक होकर आवे किंतु केशव की व्यवस्था के अनुसार जहाँ कहीं रस-मय वर्णन हो वही रसवत् अलंकार हो जाता है। सूक्ष्म भेद-विधान की ओर केशव ने बहुत रुचि दिखलाई है। उन्होंने उपमा के २२ और श्लेष के १३ भेद बताए हैं। केवल संख्या-वृद्धि के उद्देश्य से भी कुछ अलंकार ऐसे रखें गये है जिन्हें शास्त्रीय अर्थ में अलंकार नहीं कह सकते, जैसे प्रेमालंकार और अर्थालंकार। जहाँ प्रेम का वर्णन हो, वहाँ प्रेमालंकार और जहाँ और सहायकों के कम हो जाने पर भी अलंकार बना रहे वहाँ ऊर्ज्वलंकार। प्रेम के वर्णन से काव्य की शोभा बढ़ सकती है पर वह अलङ्कार नहीं हो सकता। × × × रसिकप्रिया मे रस, नायिकाभेद, वृत्ति आदि विषयो का परम्पराबद्ध वर्णन किया गया है। भेदोपभेद-विधान की तत्परता उसमे भी अधिक दिखलाई गई है। नायिकाओं

ा (पद्मिनी, चित्रिणी आदि) जाति निर्णय भी काव्यशास्त्र के
न्तर्गत तो लिया गया है, यद्यपि उसका काव्यशास्त्र से सम्बन्ध
।" (डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल—आचार्य कवि केशवदास,
लेख)

रसिकप्रिया के आधार रसमञ्जरी, नाट्य-शास्त्र और काम-सूत्र ग्रन्थ हैं। इस ग्रंथ मे भी केशव ने मौलिकता का आग्रह प्रगट किया है

(१) उन्होने सर्वप्रथम शृंगार से रसराजत्व को स्थापित किया है।

(२) उन्होने शृङ्गार के दो भेद किए—प्रच्छन्न और प्रकाश। ऐसा करने के कारण उन्हें सारे नायिकाभेद के दो रूप गढ़ना पड़े—प्रच्छन्न और प्रकाश। हो सकता है, केशव ने इसे कोई विशेष महत्त्व की चीज समझा हो, परन्तु वास्तव में "प्रच्छन्न सयोग" वियोग-काव्य की वस्तु नहीं हो सकता है, उसमे रस का पूरा-पूरा परिपाक ही दिखलाया जा सकता है।

(३) उन्होने नायिकाभेद का विशेष विस्तार किया जो अवांछनीय था, जिसकी कोई भित्ति ही न थी, और उसमें कामशास्त्र की पद्मिनी, चित्रिणी आदि नायिकाओ के जाति-भेद और तत्सम्बन्धी अनेक बाते जोड़ दीं। विपरीत आदि अनेक गर्हित और गोप्य कामशास्त्र सम्बन्धी प्रकरणो का काव्य मे प्रयोग तो सूरदास प्रभृति महानुभावो ने किया, परन्तु केशव ने उसे शास्त्रीय बल देकर स्पष्टरूप से काव्य का विषय स्वीकार किया। ऐसा करने से उन्होने उस अश्लील काव्य के स्रोत का प्रवाह खोल दिया जिसके कारण रीतिकाव्य लांछित है।

(४) उन्होने शृङ्गार के रसराजत्व की स्थापना के बहाने प्रेम जैसे दैवी भाव को कलुषित कर दिया। प्रेम मे रौद्र और वीभत्स

रस दिखलाने की पहली चेष्टा केशवदास की है परन्तु बाद में भी उनके अनुकरण में ऐसे पद बने, जो रस के विरूपावस्था के उदाहरण हैं और कवियों की मानसिक विकृति को ही प्रकट करते है। फिर "शृङ्गार के उपादानों का—विभाव, अनुभाव, सञ्चारियें का सूक्ष्म, तार्किक तथा शास्त्रीय विवेचन नहीं हुआ है। रस का काव्य से क्या सम्बन्ध है, रस की निष्पत्ति विभावादिकों से कैसे होती है, भावों और रसों का क्या सम्बन्ध है, रसाभास तथा भावाभास क्या है, इत्यादि विषयों को केशवदास ने छोड़ ही दिया है।" (केशव की काव्यकला—पं० कृष्णशङ्कर शुक्ल)

१० इससे स्पष्ट है कि शृङ्गार रस के विवेचन में ही केशव ने पूर्ण रूप से पूर्ववर्ती शास्त्रों का सहारा नहीं लिया। परन्तु वे स्वयं भी आलोचना-विवेचना का कोई स्वतन्त्र उदाहरण पीछे न छोड़ सके। उनकी मौलिकता की भित्ति कमजोर है। केशव ने रस को 'रसवत्' अलङ्कार माना है, इससे धारणा होती है कि कदाचित् 'रस' से उन्हें अधिक सहानुभूति नहीं थी। बात भी ऐसी ही थी। वे चमत्कारवादी या अलङ्कारवादी कवि हैं। उनके ग्रन्थों का विस्तृत एवम् विचित्र अलङ्कार-बाहुल्य इस बात का प्रमाण है। परन्तु यदि हम यह आशा करें कि उन्होंने हिन्दी अलङ्कारशास्त्र का किसी विशेष पद्धति पर विकास किया, तो हमारी भूल होगी। साधारण अलङ्कार-ग्रन्थों में अलङ्कार तीन श्रेणियों में रखे जाते थे—शब्दालङ्कार, अर्थालङ्कार, मिश्रालङ्कार, परन्तु केशव ने इनकी भी वैज्ञानिक विवेचना समाप्त न कर दी, वरन् उन्होंने सभी अलङ्कारों को एक में मिला कर रख दिया और कितने ही मिश्रालङ्कारों को साधारण अलङ्कारों का भेद-उपभेद बना दिया। उन्होंने 'अलङ्कार' शब्द की भी कोई परिभाषा नहीं दी है, और कुछ लोगों की राय है कि उन्होंने अलंकार अर्थ का विशेष विस्तार किया।" यह

स्पष्ट है कि अलंकार शब्द का अर्थ इस तरह लिया है जिससे अनेक ऐसे विषय भी उसमें आ गये है जिन्हें पूर्ववर्ती आचार्यों ने अलकार नहीं कहा। उन्होने अलकार के दो भेद किए हैं सामान्य और विशिष्ट। शास्त्रीय परिभाषा मे जो अलंकार कहे जाते हैं, वे विशिष्टालकार कहे गए है। सामान्यालंकार मे वे विषय आये हैं जो वास्तव मे कविता के वर्ण्य विषय हैं और जिन्हे कविशिक्षा के अन्तर्गत रखा गया था, अलकार के अन्दर नहीं। इस प्रकार की मौलिकता का क्या अर्थ है ? फिर सामान्यालंकार की सारी सामग्री उन्होंने संस्कृत के पूर्ववर्ती ग्रन्थो से ही ले ली है। अलंकारशेखर ग्रन्थ का तो इतना ऋण है कि अनेक लक्षण और उदाहरण उसके अनुवाद मात्र हैं, जैसे

हिमवत्येव मूर्जत्वक् चंदनं मलये परम्
मानवा मौलिता वर्ण्या देवाशरणतः पुनः

वर्नत चंदन मलयही, हिमगिरिही भुजपात
बर्नत देवन चरन तें, सिरतें मानुष गात

शैले महौषधीधातु वंशकिन्नर निर्भराः
शृङ्गपादगुहारत्न वनजीवाधु पत्यकाः

तुगं सृग दीरघ दरी, सिद्ध सुन्दरी धातु
सुरनरयुत गिरि वर्निए, औषध निर्भर पातु

इस पर चौथे प्रभाव से लेकर आठवें प्रभाव तक की सामग्री के लिए केशव दो सकृत ग्रंथो के पूर्णतयः ऋणी हैं—केशव मिश्र की 'अलंकारसंजरी' और अमर की 'काव्यकल्पलतावृत्ति'। इन ग्रंथों की सारी सामग्री को एक विशेष अलंकार भाग बनाकर केशव ने कौन-सी मौलिकता का परिचय दिया और उनके किस पांडित्य का पता चला।

विशिष्टालकारो मे भी केशव संस्कृत के ऋणी हैं—अधिकांश

सामग्री दंडी के 'काव्यदर्पण' से ली गई है और उसे कुछ परिवर्तन एव परिवर्द्धन के साथ उपस्थित कर दिया गया है। उदाहरण भी अनेक स्थानो पर अनुवाद मात्र हैं अथवा कहीं-कहीं दंडी के भावो का विकासमात्र उपस्थित किया है, जैसे—

अनञ्जिताऽसिल दृष्टिभ्र् रनावर्जिता मता
आश्रितोऽरुणभ्रश्चायमधास्तव सुन्दरि

भृकुटी कुटिल जैसी तैसी न करेहु होहिं
आँजी ऐसी आँखै केसोराम हेरि हारे हैं
काहे को सिंगार के विगारति है अंग आली
तेरे अंग विना ही सिङ्गार के सिंगारे हैं

दंडी और केशव दोनों के अलंकार-भेदो की तुलना मे यह स्पष्ट हो जायगा कि दंडी के कितके भेद ठीक न समझ कर अन्य नामो से उपभेद या दूसरे भेद बना दिये गये हैं। हम केवल एक अलंकार उपमा को ही लेकर यह वात स्पष्ट करेंगे। केशव ने उपमा के २२ भेद किए हैं, दंडी ने २०। इनमे से १५ भेद तो नाम, लक्षण, उदाहरण में एक ही हैं—संशयोपमा, अद्भुतोपमा, श्लेषोपमा, निर्णयोपमा, विरोधोपमा, हेतूपमा, विक्रियोपमा, मोहोपमा, अतिशयोपमा, धर्मोपमा, पालोपमा, अभूतोपमा, नियमोपमा, उत्प्रेक्षितोपमा, असंभावितोपमा। केशव के पाँच भेदो में केवल नामकरण का भेद है—परस्परोपमा (दंडी, अनन्योपमा) दूषणोपमा (निन्दोपमा), भूषणोपमा (प्रशंसोपमा), गुणाधिकोपमा (प्रतिषेधोपमा), लाक्षणिकोपमा (चटूपमा)। रह गये दो नए भेद जो दंडी में नहीं हैं—संकीर्णोपमा और विपरितोपमा। इनका विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इनके मूल में साम्य-भावना है ही नहीं जो उपमा के लिए आवश्यक है, अतः ये उपमा के भेद नहीं हो सकते।

दंडी का ही सहारा लेकर केशव ने 'यमक' के भी अनेक भेद कर डाले है, यद्यपि यहाँ वे दंडी के पीछे रह गये है।

पर आश्चर्य का विषय है कि केशव ने अनुप्रास को भी यमक का ही एक भेद बना डाला है। इस प्रकार हम देखते हैं कि केशव में मौलिकता का आग्रह तो है, परन्तु उसे स्थापित करने के लिए न उनके पास अध्ययन है न प्रतिभा। क्या रसशास्त्र, क्या अलकार-शास्त्र, क्या कविता के वर्ण्य विषय, गुण-दोष, सभी के लिए केशव ने संस्कृत आचार्यों की नाड़ी को टटोला है और उसे न समझ कर भी "नीम हकीम" बनने की चेष्टा की है। वे संस्कृत आचार्यों के कन्धो पर बैठ कर आचार्यत्व की ऊँची गद्दी तक उठना चाहते है, परन्तु जो संस्कृत के रीतिशास्त्र से परिचित हैं, वे उनके इस प्रयत्न को हास्यास्पद ही समझेंगे। जो हो, यह स्पष्ट है कि केशव का आचार्यत्व एक बहुत बड़ा भ्रम है जिसने हिन्दी साहित्यकारों

को तीन शताब्दियों तक भुलाये रखा है। उनकी भाषा, उनकी कविता-शैली, उनकी गम्भीरता, उनका राजगुरुत्व, समकालीन और परवर्ती राजदरबारी कवियों पर उनका प्रभाव—ये बातें ऐसी हैं जिन्होंने जाने-अनजाने केशव को गुरुत्व दे दिया। यह हर्ष का विषय है कि इस गुरुत्व को स्वीकार करके ही हिन्दी रीति ग्रन्थकारों ने उनका पीछा छोड़ दिया और अन्य संस्कृत आचार्यों को लेकर स्वतन्त्र रूप से रीतिपथ प्रदर्शित किया। फिर भी आचार्यत्व नहीं, तो केशव की कविता का ही एक शक्तिशाली प्रभाव पिछले तीन सौ वर्षों के शृंगार काव्य पर पड़ा है और आज भी एक सीमित वर्ग उसे रूढ़ि बना कर चल रहा है।

—

———

७

केशव का वीर-काव्य

१६वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक वीर काव्य की कोई निश्चित चना उपलब्ध नहीं है, यदि हम विद्यापति की 'कीर्तिलता' को ोड़ दें जो पन्द्रहवीं शताब्दी की रचना है। १५वीं शताब्दी के त्तराद्ध में वीरकाव्य मिलने लगता है। केहरी कवि (वर्तमान ५८३ ई०) की कुछ रचना उपलब्ध है। इसके बाद तुलसी की चनाएँ (मानस और कवितावली के सुन्दर और लंकाकांड) ाती हैं। फिर केशव के तीन ग्रन्थ रतनबावनी, वीरसिहदेव चरित ौर जहाँगीर जसचन्द्रिका (सं० १६५० के लगभग)। १६वीं त ब्दी और उसके बाद में दरबारों में चारणों, भाटों और ास्ति-लेखकों के उपस्थित होने की परम्परा चल पड़ी। तब से े वीरकाव्य कई रूपों में मिलता है :

(१) प्रशस्ति काव्य जैसे छत्रसाल दशक, शिवाबावनी, मंत्र पद, इत्यादि

(२) खण्ड-काव्य जैसे गोराबादल की कथा (जटमल, सं० ६००)

(३) रासोग्रन्थ जैसे राणा रासा (दयालदास सं० १६७१-६७६), गुणराय रासो और रामारासौ माधवदास, सं० १६७५ आगे पीछे।

(४) चारणों की 'वात' और 'ख्यात'

(५) हिन्दी राष्ट्रीयता एवं जातीयता के प्रेमियों के काव्य

जैसे भूषण के शिवा सम्बन्धी छन्द, पृथ्वीराज और हुरसा के उद्बोधन और वीरगीत। औरंजेब के शासन के अत्याचार ने हिन्दुओं को जगा दिया और दक्षिण मे शिवाजी, राजपूताने में छत्रसाल और रामसिंह, हिन्दी प्रदेश में नागा और पंजाब मे सिखो ने उसका दृढ़ प्रतिरोध किया। फलस्वरूप इन सभी नेताओं के आश्रितो एवं प्रशंसकों मे वीरकाव्य बना।

केशव की कविता ओरछा नरेश रामसिंह के भाई इन्द्रजीतसिंह के आश्रय में रहकर लिखी गई। जिन रतनसिंह और वीरसिंह देव को केशव ने अपना विषय बनाया वे, इन्द्रजीतसिंह के भाई थे, और वीरत्व करके सद्गति को प्राप्त हुए थे। इसी प्रकार 'जहाँगीर जसचंद्रिका' भी ओरछा दरबार से उनके सम्बन्ध के अनुरोध से लिखी गई। केशव ओरछानरेश की ओर से जहाँगीर के दरबार मे भेजे गये थे, कि वह जुर्माना माफ हो जाय, जो मुगल सम्राट् ने उन पर कर दिया था। वे इस काम मे सफल हुए। कदाचित् जहाँगीर को प्रसन्न करने के लिए ही उन्होंने जहाँगीर जसचन्द्रिका लिखी और दरबार मे पेश की। इसकी कोई प्रति प्रकाशित नहीं हुई है, यद्यपि जिन लोगो ने इसे देखा है, वे बताते है कि यह साधारण रचना है। वास्तव में यह पुस्तक प्रशस्ति ग्रंथो की श्रेणी मे ही आती है जिनमे आश्रयदाता के गुण-दोषा पर ध्यान न कर उनकी प्रशंसा को ही अपना ध्येय बनाया जाता था। अन्य दोनो ग्रंथो के नायक सचमुच वीर पुरुष थे। रतनसिंह ने १६ वर्ष की छोटी आयु मे अमानुषिक वीरता दिखलाई थी। इन ग्रंथो मे केशव की दृष्टि प्रशंसा पर इतनी नहीं, जितनी ऐतिहासिक तथ्यो के वर्णन और रसपरिपाक पर है। इन ग्रथो के अतिरिक्त रामचन्द्रिका के लंकाकांड मे भी हमे वीरकाव्य के दर्शन होते है।

रामचन्द्रिका मे छन्दो के अति शीघ्र बराबर बदलते रहने के

कारण-रस प्रवाह की धारा संकुचित हो गई है। उनकी शृंगार-प्रियता और चमत्कार-प्रदर्शन की प्रवृत्ति से भी इस ग्रन्थ के वीर-भाव को प्रसार मे हानि हुई है। परन्तु इन्ही प्रवृत्तियों के कारण कहीं-कहीं सुन्दर चित्र बन पड़े हैं—

भगीं देखिकै शंकि लंकेशबाला
दुरी दौरि मंदोदरी चित्रशाला
तहाँ दौरगौ बालि को पूत फूल्यो
सबै चित्र को पुत्रिका देखि भूल्यो
गहै दौरि जाको तजै ताकि ताको
भली कै निहारी सबै चित्रसारी
लहै सुन्दरी क्यों दरी को विहारी
तजै दृष्टि को चित्र की सृष्टि धन्या
हँसी एक ताको तहीं देवकन्या
तहीं हास ही देवकन्या दिखाई
गही शंकि कै ले कराई बताई
सुरानी गहे केश लंकेश रानी
तमश्री मनो सूर शोभा निसानी
गहे बाह ऐंचे चहूँ ओर ताको
मनो हंस लीन्हें मृणाली लता को
छुटी कंठमाला लुटैं हार टूटे
खसैं फूल फूले लसैं केश छूटे
फटी कंचुकी किंकणी चारु छूटी
पुरी की सी मनों रुद्र लूटी
सुनी लङ्करानीन की दीन बानी
तहीं छाडि दीन्हो महा मौन मानी
उठ्यो सो गदा लै यदा लंकबासी
गये भागि कै सर्व शाखा विलासी

परन्तु अन्य दोनों ग्रन्थों में केशव ने वीरकवित्व का भी सुन्दर परिचय दिया है। 'वीरसिंह देव चरित' में वीरसिंह देव महाराज ओरछा का चरित्र है। इसमें अनेक प्रसंगों के साथ अबुलफ़ज़ल की मृत्यु का भी वर्णन है जिसमें वीरसिंह देव लांछित हुए थे। परन्तु केशव का यह काव्य वीरसिंह के इस कृत्य के कारणों पर भी प्रकाश डालता है और उनकी निर्दोषता सिद्ध करता है। सच तो यह है कि केशव की इस रचना से सामयिक इतिहास की कुछ बड़ी भ्रांतियाँ नष्ट हो सकती है और कितनी ही ऐतिहासिक घटनाओं के मूल में छिपे कारणों का उद्घाटन हो सकता है। वीरसिंहदेव की रचना-पद्धति में भी केशव की मौलिकता सम्मिलित है। उन्होंने उसकी रचना दान, लाभ और विंध्यवासिनी के संवाद के रूप में की है। इस प्रकार ग्रंथ में नाटकीयता आ गई है। केशव के दूसरे वीरकाव्य 'रतनबावनी में' कूट छंदों में मधुकर शाह के एक पुत्र रतनसेन की प्रशंसा की गई है जो अल्पायु में अकबर की विशाल वाहिनी से लड़ते हुए मृत्यु को प्राप्त हुए। इस ग्रन्थ में केशव चारणों का छप्पय छन्द में प्रयोग की हुई अनुस्वार और व्यंजनों के द्वित्व से पूर्ण शैली से प्रभावित हुए हैं। वीरसिंह देव के चरित्र में उन्होंने इस शैली का और आग्रह नहीं दिखाया है, अतः उसमें प्रसादगुण अधिक है। परन्तु मौलिकता वहाँ भी है। वह इस रूप में, कि इसमें रतनसिंह की वीरनिष्ठा को प्रकाशित करने के लिए उन्होंने विप्ररूप में भगवान की अवतारणा की है, जो रतनसिंह को जीवन का मूल्य समझाते हैं, परन्तु रतन मान और प्रतिष्ठा की मृत्यु को जीवन से श्रेष्ठतर सिद्ध करता हुआ मृत्यु की बलि-वेदी पर चढ़ जाता है। दोनों ग्रंथों की शैली नीचे उद्धृत की जाती है—

रतनसेन कह बान सूर सामन्त सुनिज्जय
करहु पैज पन धारि मारि रणमंतन जिज्जिय

बरिय स्वर्ग अच्छरिय हरहु रिपु गर्ब सर्व अब
जुरि करि सङ्गर आज सूरमण्डल भेदहु सब
मधुमाइ नद इमि उच्चरह खड खड भिडहि करहुँ
करहुँ सुदन्त हथियान के मर्दहुँ दल महँ प्रन धरहुँ
जहँ अमान पट्ठान ठान हियवान सु उट्ठिव
तहँ केशव काशी नरेश दल शेष भरिट्ठिव
जहँ तहँ पर जुरि जोर ओर चहुँ दुदुंभि बज्जिय
तहाँ भिरट भट सुभट छुट्टक घोट्टक तन लज्जिय
जहँ रतनसेन रण कहँ चल्लिव हल्लिय महि कम्प्यो गगन
तहँ ह्वै दयाल गोपाल तब विप्र भेव बुल्लिय वचन

(रतनबावनी)

काढ़े तेग सोइ यों सेख
जुन तनु धरे धूम धुज देख
दड धरै जनु आपुन काल
मृत्युमहित जम मनहु कराल
मारै जाहि खंड द्वै होइ
ताके सम्मुख रहै न कोइ
गाजत गज हींसत हय ठारे
बिनु सूँडनि बिनु पायन कारे
नारि कमान तीर असरार
चहुँ दिसि गोला चले अपार
परम भयानक यह रन भयौ
सेखहि उर गोला लगि गयौ
जूझि सेख भूतल पर परै
नैकु न पग पाछै को धरै

(वीरसिंहदेव चरित)

के अवतरण से प्रगट है कि केशव की वीर कविता पर

डिंगल काव्य का प्रभाव है, परन्तु वह मूलतः व्रजभाषा में ही है। यह प्रभाव विशेषकर द्वित्व वर्णों और अंत्यानुप्रास में है जैसे—

सुनि रत्नदेव मधुशाह सुव पच्च साथ वरि लज्जिये
कहि केशव पंचन संगरहि पंच्च भजे तहँ भज्जिये

वीसल देव मे हमें कवित्त का भी सुन्दर प्रयोग मिलता है—

ह्वै गयो विठान वल मुग़ल पटानिन कौ,
भमरै भदौरियाऊ संगम हिये छ्यौ
सुखे मुख सेखति के खस्योई खिस्यानौ खन्न,
गढ़ो ह्यौ गाढ़ पोंडे रुकौ न इतै दयो
वीरसिंह लीनी जीति पति राजसिंह की
तुसार कैसो मार्चो मरु केसोदास ह्वै गयो
हाथमय हयमय हसम हथियारमय
लोहमय, लोथिमय भूतल सवै गयो

रसोत्कर्ष के लिए कहीं-कहीं डिंगल का अनुकरण है और टवर्ग का प्रयोग है—

जहँ अमान पट्ठान ठान हिय वान कुउट्ठिव
तहँ केशव काशी नरेश दल रोस धरिट्ठिव
जहँ तहँ पर जुरि जोर ओर चहुँ दुंदभि बज्जिय
तहाँ विकट भट सुभट घुटक घोटक तन लज्जिय

केशव पहले कवि हैं जिन्होंने वीरकाव्य की रचना व्रजभाषा मे की परन्तु इस प्रकार की कविता मे अत्यन्त उत्कृष्ट राजस्थानी भाषा के चारण काव्य को सूक्ष्म दृष्टि की ओट नहीं किया जा सकता था। इसलिए कही-कही राजस्थानी के अनेक रूप मिलते हैं और भाषा को प्रभावात्मक बना देते हैं। परन्तु शब्दो और प्रयोगो मे डिंगल से भले ही कितना साम्य हो, सज्ञाशब्द, कारकों के रूप तथा क्रियाओं के रूप व्रजभाषा के ही है। अतः जिस

भाषा में इन ग्रन्थों की रचना हुई है, वह ब्रजभाषा ही है। केशव के बाद तो कृत्रिम डिंगल का प्रयोग बहुत अधिक चल गया है। नीचे का अवतरण देखिये—

को अड्डुल्ल हरवल्ल को सुकरवल्ल भटित्तह
कि गजठल्ल मजिल्ल भूप छात्तल छयल्लह
हुज्जन कोम हुहिल्ल कहा कोतिल्ल रुसिल्लह
किंतु किन्न बनि मिल्ल वेत किंपिच्चि सुल्लल्लह
सादुल्लमल्ल सकल्ल से रए मल्ल जे सल्ल जिन
रावत्त मल्लसिंघ रहे न को आसुर मुरित

ऊपर का अवतरण 'राजविलास' (मान) से लिया गया है। यहाँ डुलना, हरावल, ढलना, मझला, भला, अकेला आदि के रूप बदले मिलते हैं डुल्ल, हरवल्ल, ठल्ल, मझिल्ल, मल्ल, सकल्ल इत्यादि। यह प्रवृत्ति ध्वन्यात्मक प्रयोग के साथ मिलकर काव्य को अत्यन्त कठिन और रसपरिपाक को कुण्ठित बना देती है। यह प्रवृत्ति कभी-कभी हास्यास्पद भी हो जाती है, जैसे—

श्रीधर दल बल प्रबल लखि लोकपाल रह लज्जि
महमद्द सोलह वीरजू चढ़त कटक वर सज्जि
सज्जद्दल रनकज्ज जनघ समज्जज्जयवर
बंगग्गहसि मतगग्गननि, उतंग्ग गिरिवर
रगग्गगति सुकुरंगागाखन तुरंगग्गति सुर
पच्छूद्दभरथिर कच्छक्करव सुलच्छ समर दुर

(श्रीधर जंगनामा)

स नॅं नँ नॅं नॅं नॅं नॅं छुट्टियं पर जुट्टिय नहि हुट्टियं
फ नॅं नॅं नॅं नॅं नॅं नॅं तब फुट्टियं भुर हुट्टियं धुव लुट्टियं
ख नॅं नॅं नॅं नॅं नॅं धुट्टियं लगि वानसों असि भुट्टियं
घ नॅं नॅं नँ नॅं नॅं घुट्टियं भट भुट्टियं भर घुट्टिय

(सूदन : सुजानचरित)

इस प्रकार हम देखते हैं कि व्रजभाषा में लिखा वीरकाव्य अधिकांश डिंगल परम्परा का पालन है। इसमें राष्ट्रीयता और जातीयता की कोई भावना नहीं (भूषण के काव्य का छोड़कर)। इसका अधिकांश भाग-प्रशस्ति मात्र है। और कहीं-कहीं स्पष्ट रूप से ऐतिहासिक पराजय को जय बना देता है। जहाँ इतिहास है भी, वहाँ कल्पना का इतना मिश्रण हो गया है कि इतिहास आँख की ओट हो जाता है। भाषा, भाव, विषय-निरूपण सभी में अनुकरण है। अधिकांश काव्य वर्णनात्मक है और उसमें परम्परागत छन्दों, उपमाओं आदि का प्रयोग है। युद्ध-वर्णन, सेनासज्ज-वर्णन, युद्ध के बाद का रणस्थल और स्वयं युद्ध सब में रूढ़ि का आश्रय लिया गया है।

परन्तु केशव के काव्य में, विशेषकर वीरसिंहदेव चरित में, वह सब दुर्गुण नहीं हैं जो परवर्ती व्रजभाषा वीरकाव्य की विशेषताएँ हैं। उन्होंने इतिहास में कल्पना का मेल नहीं किया है और उनके वर्णनों में मौलिकता है। 'रामचन्द्रिका' के वर्णनों में कवि की जिस सिद्धहस्त लेखनी के दर्शन हमें होते हैं, वही हमें यहाँ भी मिलती है। यह शोक का विषय है कि वीरकाव्य लेखकों की दृष्टि 'वीरसिंहदेव चरित' पर नहीं गई और केशव का शृंगारिक कवि और आचार्य का रूप ही प्रमुखता पाता रहा।

— —

परिशिष्ट

रीति-काव्य

केशवदास उस कविता के अग्रगण्य कवि है जो हिन्दी साहित्य के 'रीतिकाव्य' के नाम से प्रसिद्ध है। जैसा कि विद्वानो ने कहा है, यह नाम उस काव्य के लिए पूर्णत: उपयुक्त नहीं है जो केशव के समय से बनना शुरू हुआ और जिसकी धारा अविच्छिन्न रूप से आधुनिक काल (१८५०) तक चलती रही। परन्तु उपयुक्त न होने पर भी नाम चल पड़ा है, और इसलिए उसका प्रयोग करना आवश्यक होता है। कुछ अन्य नामो की ओर भी सुझाव हुआ है जैसे कलाप्रधान काव्य, शृगार मूलक काव्य, परन्तु कला, शृंगार रीति-ग्रन्थो का अनुकरण रीतिकाल या उत्तर मध्ययुग के काव्य (१६००—१८५०) की कविता की केवल कुछ रूढियाँ थीं। अन्य रूढ़ियाँ और विशेषताएँ भी इतनी ही महत्वपूर्ण है।

रीति-काव्य की मूल भावना शृंगार है। पुरुष-स्त्री के प्रकृत प्रेम का वर्णन, उनके यौवन-विकास, केलिविलास, हास-परिहास, संयोग-वियोग इस काव्य के विषय है। हम देखते है शृंगार की भावना ने हिन्दी के प्रारम्भिक काल मे ही हमारे साहित्य मे प्रवेश कर लिया था। इस भावना को हम राजपूत चारणो की वीर-कथाओ के केन्द्र मे उपस्थित पाते है। रासो के इतने सभी युद्धो का कारण स्त्री का सौन्दर्य है, आल्हा-ऊदल की लड़ाइयो मे वीर-

रस पूर्वराग से ही परिचालित है, समाप्ति भी परिचय-ग्रन्थि मे होती है। नरपति नाल्ह का वीसलदेव रासो तो नाममात्र को वीर-काव्य है। इसमे नग्न प्रेम के वर्णन और राजमती के वियोग-चित्रण के सिवा कवि का क्या उद्देश्य हो सकता है? इसी से वीर कथा-काव्य मानने की परिपाटी भर पड़ गई है जो इतिहासो मे चली आ रही है। इसी प्रकार हम सिद्ध कवियो की साधनाओं के पीछे रतिभाव का विकृत रूप पाते हैं। इन्द्रियजन्य विकारों को साधना का मार्ग बनाया जा रहा है।

जयदेव के काव्य 'गीतगोविन्दम्' से पहली वार कृष्ण और शृङ्गार का पूर्ण संयोग होता है, साथ ही मधुर भाव-भक्ति का जन्म होता है। उन्होंने कहा—

> यदि हरिस्मरणे सरसं मनो यदि विलासु कुतूहलम्
> मधुर कोमल कांत पदावली श्रणु तदा जयदेव सरस्वीम्।

यहाँ स्पष्ट ही कवि के तीन उद्देश्य हैं:—

१—हरिस्मरण

२—विलास-कला-कुतूहल

३—श्रुतिमधुर काव्य (मधुर कोमल कांत पदावली) जयदेव में अपने प्रबन्ध के सम्वन्ध मे लिखा है, श्री वासुदेव रतिकेलि कथा समेतमेतं करोति जयदेव कविः प्रवन्धम्। जयदेव ने अपने प्रबन्ध-काव्य के मङ्गलाचरण श्लोक को ब्रह्मवैवर्त पुराण के राधा-कृष्ण के प्रथम दर्शन की कथा पर खड़ा किया है—

> मेघैमेदुरमम्बरं वनभुवः श्यामास्तमाल द्रुमैर्नक्त भीरुहयं त्वमेव तदियं राधे गृह प्रापय। इत्थं नन्दनिदेश तश्चलितयोः प्रत्यध्वकुञ्ज द्रुम राधा माधव योजयंति यमुनाकूले रहः केलयः॥

यहाँ जयदेव ने इसको स्पष्ट कर दिया है कि ये माधव (कृष्ण) परम पुरुष ही है और दश अवतार इन्हीं के अवतार हैं (दशाकृति

न्त कृष्णाय तुभ्यं नमः) (केशवधृत दशविध रूपं जय जगदीश हरे) यह स्पष्ट है कि गीतगोविन्दम् की रचना तक कृष्ण परब्रह्म दशावतारी मूलपुरुष थे। भागवत में उनका गोपियों (जीवात्माओं) से केलिविलास रूपक रूप में वर्णित था। ब्रह्मवैवर्त पुराण में मूल प्रकृति राधा ने गोपियों का स्थान ले लिया। जयदेव ने इस अवतारी भाव के साथ कामकलाविद राधाकृष्ण का भाव भी गुम्फित कर दिया। उन्होंने राधा कृष्ण के मान, दूती, अभिसार और निकुञ्जकेलि एवं रास की विस्तृत चित्रपटी तैयार की जयदेव की कविता का प्रभाव विद्यापति पर पड़ा। उनके कृष्ण-काव्य का आधार ही रसशास्त्र है। यदि विद्यापति के कृष्ण-काव्य से राधा-कृष्ण के नाम हटा लिये जायें तो कुछ थोड़े से पदों को छोड़ कर उनके सारे साहित्य से अध्यात्म का आवरण उतर जाता है। यही बात सूफी कवियों के सम्बन्ध में पूर्णतयः चरितार्थ है। कृष्ण-काव्य के इतर कवियों की मनोवृत्ति के विषय मे तो कोई सन्देह नहीं। मधुर भक्ति मे लौकिक प्रेम को ही ईश्वरोन्मुख किया जा रहा है। नन्ददास और रसखान इसके उदाहरण है। आगे चलकर मुगल-कालीन विलासिता का प्रभाव भी कृष्ण-काव्य पर पड़ा और एकदम लोक-जीवन की भित्ति पर उतर आया।

इस प्रकार हम देखते है कि हिंदी के आदि काल से शृङ्गार-रस का निरूपण होता चला आ रहा है। परन्तु उस पर वीरता और अध्यात्म का आवरण है। धारा प्रच्छन्न रूप से चल रही है। बाद को अपने युग की विलासिता और संस्कृत के उत्तर कालीन काव्यों और आचार्यों के प्रभाव के कारण जल ऊपर आ गया है और धारा साफ दिखलाई पड़ती है। १६वीं शताब्दी के ५० वर्ष बीतते-बीतते उसने केशवदास जैसे कवि को जन्म दे दिया है। अब उसके अस्तित्व से सन्देह ही नहीं रहा।

शृङ्गाररस (रीति) की रचनाओं का एक दूसरा पहलू भी है। इन रचनाओं का सूत्रपात अधिकतर संस्कृत रीति-आचार्यों के रस, अलङ्कार, या ध्वनि सम्बन्धी सूत्रों को पकड़कर हुआ है अथवा इस युग के कवियों की एक विशेष प्रेरणा यह भी रही है कि वे रीतिशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ लिखें और उदाहरण में अपने ही पद (कवित्त-सवैये) रचें। इन कवियों में ऊंचा पांडित्य न था, ऊँचा अध्ययन भी न था, न मौलिक तर्कशक्ति ही थी। हाँ, कवि-प्रतिभा कम न थी। फल यह हुआ कि एक बड़ा साहित्य तैयार हो गया जिसमें एक दोहे में लक्षण और कवित्त और सवैये में उसका उदाहरण रहता। उदाहरण सदैव ही लक्षण पर पूरा उतरे, यह बात भी नहीं। कभी-कभी वे लक्षण एक ही ठहरते हैं, कभी लक्षण ही अस्पष्ट और गलत हैं, परन्तु उदाहरण सदैव उच्चकोटि के होते हैं। वास्तव में आचार्यत्व का दम भरने वाले रीतिकालीन कवि उच्च प्रतिभा-सम्पन्न कवि-मात्र थे।

इन रचनाओं की परम्परा में हमें सबसे पहले कृपाराम मिलते हैं जिन्होंने १६वीं शती के पूर्वार्द्ध में "हित तरंगिणी" की रचना की, यद्यपि पं० पीताम्बरदत्त बडत्थ्वाल जैसे विद्वानों का अनुमान है कि यह ग्रन्थ बिहारी सतसई के बाद की रचना है (देखिये कोषोत्सव स्मारक ग्रन्थ में उनका केशवदास पर लेख)। परन्तु असल में यह परम्परा १६वीं शताब्दी के आरम्भ में ही अथवा उसके भी कुछ पहले जाती है क्योंकि कृपाराम के अपने पूर्ववर्ती रीति-कवियों के नाम लिये हैं। इनके समसामयिक गोप कवि और मोहनलाल मिश्र के अप्राप्त ग्रन्थों रामभूषण और अलंकार-चन्द्रिका (गोप) और शृङ्गार-सागर (मोहनलाल मिश्र) का उल्लेख करना भी अनुचित न होगा। इन अप्राप्य ग्रन्थों के बाद हमें केशवदास के बड़े भाई पं० बलभद्र मिश्र का "नख-शिख" सम्बन्धी ग्रन्थ मिलता है।

रीतिग्रन्थों का एक दूसरा स्रोत भी हमारे पास है—वह है

कृष्ण-भक्ति-काव्य की व्याख्या में लिखे ग्रंथ। सूरदास की साहित्य-लहरी में नायिका-भेद और अलंकारों का ही निरूपण है, यद्यपि इसमें न सब नायिका ही मिलेगी, न सब अलंकार ही। उनके शिष्य और "अष्टछाप" के कवि नन्ददास ने 'रसमञ्जरी' सम्बन्धी नायिका-भेद का ग्रन्थ लिखा और उनके अन्य ग्रन्थों पर भी रस-विवेचन और शृङ्गार रस सम्बन्धी प्राचीन मान्यताओं की पूरी छाप है। इसी समय अकबर के दरबार में रहीम ने "बरवै नायिका-भेद" लिखा और तुलसी के ग्रन्थों पर भी उनके रस-शास्त्र के अध्ययन की पूरी छाप है। इन सब कवियों की दृष्टि 'रस' पर ही अधिक गई थी, वे सब उच्च रसकोटि के कवि थे।

परन्तु हिन्दी काव्य-संसार में जिस रीति-कवि की ओर हमारी दृष्टि सब से पहले जाती है, वे महान कवि केशवदास ही हैं। रीतिकाल के कवियों में वे अग्रगण्य हैं। केशव ने 'रामचन्द्रिका' में रामकथा लिखी, परन्तु उसमें भक्तिभावना नहीं है, पांडित्य प्रकाशन ने उनकी अनेक कविताओं को ऊहापोहात्मक कर दिया है, उसमें वासना का भी गहरा पुट है। उनकी दो रचनाएँ वीर प्रधारित हैं—वीरसिंहदेव चरित और रतनबावनी—परन्तु इससे वे वीर-काव्य के कवि नहीं हो जाते। हमें उनकी रचनाओं की मूल प्रवृत्ति देखना है। वास्तव में केशवदास ने अपने समय की सभी धाराओं को बल दिया है, परन्तु वे प्रतिनिधित्व रीतिकाव्य-धारा का ही कर सके हैं। उनकी रीति सम्बन्धी दो पुस्तकें हैं—रसिकप्रिया (शृङ्गार-रस सम्बन्धी) और कविप्रिया (कविज्ञान और अलंकार सम्बन्धी) यही पुस्तकें हमारे सामने उनके प्रकृत रूप को रखती हैं। केशव भक्तिकाल और रीतिकाल की सन्धि पर खड़े हैं, इसलिए हम उन्हें भक्ति-विषयक कथानक पर लिखते भी देखते हैं (१६०१, रामचन्द्रिका), परन्तु उनके पांडित्य और उनकी रीति-कालीन प्रवृत्ति ने भक्ति का गला घोंट दिया है। वे

मौलिकता के पीछे पड़ गये हैं। कथानक में मौलिकता है, छन्द पद-पद पर बदले हैं, अधिकांश छन्द अलंकारों के उदाहरण जान पड़ते हैं और इस सबमे प्रबन्धात्मकता ऐसे खो जाती है कि ग्रन्थ गोरखनाथी जंजाल रह जाता है। केशव की महत्ता यह है कि उन्होंने पहली बार हिन्दी साहित्य को संस्कृत साहित्य के सभी काव्यांगो का परिचय करा दिया। जैसा हम ऊपर बता चुके हैं रस और अलंकार ग्रन्थोंका प्रकाशन १५४१ ई० (हिततरंगिणी, कृपाराम) से ही हो गया था, परन्तु ये प्रयत्न संस्कृत साहित्यशास्त्र से बहुत अधिक प्रभावित नहीं थे, न उस समय इस प्रकार की कोई परिपाटी खड़ी हुई जैसा बाद मे हुआ। इनमे से किसी ने काव्यों का पूरा परिचय भी नहीं कराया था। अधिकांश कवि—आचार्य रसवादी थे। केशवदास ने भामह, उद्भट और दंडी जैसे प्राचीन आचार्यों का अनुसरण किया जो रस, रीति आदि को अलंकार मान लेते थे। उनकी प्रकृति को स्वयं चमत्कार प्रिय था और इसी से उन्होंने संस्कृत साहित्य की ऐसी पुस्तकों को अपनाया जो साहित्यशास्त्र के विकास की दृष्टि से बहुत पीछे पड़ गई थी।

कदाचित् केशव की इसी अति प्राचीनवादिता के कारण ही उनके बाद रीतिग्रन्थ रचने की परिपाटी नहीं पड़ी—सब लोग उन प्राचीन ग्रन्थों से परिचित भी न थे। परिपाटी आधी शताब्दी बाद चली और उसने परवर्ती आचार्यों का आश्रय लिया। अलंकार ग्रन्थों का प्रणयन चन्द्रालोक और कुवलयानंद के अनुसरण में हुआ और काव्य के रूप के सम्बन्ध मे रस को प्रधान मानने वाले ग्रन्थों "काव्यप्रकाश" और "साहित्य-दर्पण" को आधार बनाया गया। रीतिग्रन्थ-प्रणयन की यह अखण्ड परम्परा म्परा चितामणि त्रिपाठी से आरम्भ होती है जिन्होंने १६४३ ई० के लगभग काव्यविवेक, कविकुलकल्पतरु, काव्यप्रकाश ग्रन्थ

प्रकाश ग्रन्थ लिखे और छन्दशास्त्र पर भी एक पुस्तक लिखी। इस परम्परा के कवि एक दोहे मे लक्षण लिखते हैं और कवित्त या सवैये मे उनका उदाहरण देते है। इस प्रकार एक दोहे मे लक्षण स्पष्ट नही हो सकता था, न उसमे विवेचन के लिए ही स्थान था। इसके लिए गद्य ही उपयुक्त होता, परन्तु गद्य विशेष प्रयोग मे नहीं आ रहा था। दूसरी बात यह है कि आचार्यत्व का ढोंग भरनेवाले इन कवियो मे न इतनी विद्वत्ता थी जितनी संस्कृत कवियो मे, न सूक्ष्म पर्यालोचन शक्ति। उन्होने संस्कृत रीतिशास्त्र को किसी प्रकार आगे नहीं बढ़ाया। लक्षण-ग्रन्थ लिखना बहाना मात्र था, उद्देश्य कविता था। एक दोहे मे अपर्याप्त उदाहरण लक्षण से मेल भी नहीं खाता था। कुछ अलंकारो के भेद न समझने के कारण भी गडबड़ी थी और प्रायः संस्कृत और हिन्दी आचार्य-कवियो के भेद इस लिए भिन्न हो गये है। परन्तु विभिन्नता का कारण कोई वैज्ञानिक दृष्टिकोण नहीं था, अतः हिन्दी-साहित्य मे अलंकारो आदि का अध्ययन विकास की दृष्टि से नही किया जा सकता।

रीति-काव्य के कवियो मे एक दूसरा वर्ग ऐसे कवियो का था जो एकदम लक्षण-ग्रन्थो की रचना करने नहीं बैठे, परन्तु साहित्यशास्त्र उन्हे भी अलक्षित रूप से प्रभावित कर रहा था। इन कवियो की रचनाएँ तुलना की दृष्टि से पहले कवियो की रचनाओं से अधिक महत्त्वपूर्ण है। इस वर्ग के हम दो भाग कर सकते है। पहले वर्ग के कवियो (बिहारी, मतिराम आदि) पर साहित्यशास्त्र, कला और संस्कृत साहित्य का प्रभाव था, दूसरे वर्ग के कवियो मे (जो उत्तरार्द्ध मे आते है, जैसे, बोधा, घनानन्द) अनुभूति की प्रधानता थी और मौलिकता की मात्रा अधिक थी।

रीतिकाव्य की रचनाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसपर संस्कृत रीतिशास्त्र का प्रभाव तो था ही, परन्तु

इससे भी अधिक संस्कृत काव्य-परम्परा का प्रभाव था। इसे उन्हीं कवि प्रसिद्धियों और काव्य-गत रूढ़ उपमानों के दर्शन होते हैं जो संस्कृत के परवर्ती काव्य में ग्रहण हुए हैं। नायिका के अंगों के उपमानों के सम्बन्ध में भी यही कहा जा सकता है। जहाँ कहीं फ़ारसी का प्रभाव लक्षित है, वहाँ भी वह परवर्ती संस्कृत कवियों (गोवर्धनाचार्य आदि) के ढंग पर ग्रहण किया गया है। इस प्रकार इस काव्य की आत्मा संस्कृत साहित्य के परवर्ती काल से बल पाती है। वह मूलत. भारतीय है, यद्यपि वासनामूलक और ऐश्वर्यमूलक। एक प्रकार से उसमें भक्तिकाव्य के प्रति प्रतिक्रिया भी है जो रूढ़िवादी, रोमांटिक और पारलौकिक था। इसके विपरीत रीतिकाव्य नैतिक भावनाओं से हीन, क्लासिकल और ऐहिक (लौकिक) था, परन्तु यह नहीं समझना चाहिये कि इस प्रकार की कविता से उस समय की जनता की मूल मनोवृत्ति पाई जाती है। जहाँ तक कलाप्रियता की बात है, वहाँ तक तो यह ठीक है, परन्तु "शृङ्गार के वर्णन को बहुतेरे कवियों ने अश्लीलता की सीमा तक पहुँचा दिया था। इसका कारण जनता की अभिरुचि नहीं थी, आश्रयदाता राजा-महाराजाओं की रुचि थी, जिनके लिए कर्मण्यता और वीरता का जीवन बहुत कम रह गया था।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २६१) जिस प्रकार राजा-महाराजा और मध्य वर्ग के पंडित या कायस्थ-समाज का जीवन निश्चित परिपाटी में बँध गया था, उसी तरह यह काव्य भी परपाटी में बँधा हुआ था।

एक प्रकार से अधिकांश काव्य नागरिक था। उसके प्रकृति-वर्णन कल्पना-मूलक और शास्त्र एवं साहित्य-प्रेरित थे। उद्दीपन की जो पद्धति ग्रहण की गई थी, उसका आधार शास्त्रीय ज्ञान रहा, स्वतन्त्र प्रकृति पर्यवेक्षण नहीं। इसके अतिरिक्त एक नई

पद्धति "बारहमासे" (बारह-महीनो मे विरहिणी की दिनचर्या) लिखने की चल पड़ी जो "षटऋतु-वर्णन" का ही विकास था। हो सकता है, इसके पीछे हिन्दी लोकगीतो का भी प्रभाव हो। इसका मूल भी विप्रलंभ मे था। बरवौ और दोहो मे कुछ कवि प्राकृत गाथाओ के लेखको के साहित्य और उनके दृष्टिकोण को अपनाने के कारण गॉव की प्रकृति और ग्रामीण प्रेम और नायिकाओ का चित्रण हुआ जो इस सारे साहित्य मे वही स्थान रखता है जो मरुभूमि मे तरुवेष्ठित जलमयी वनस्थली।

कुछ उस समय की साहित्यिक एवं सामाजिक परिस्थिति पर भी विचार कर लेना चाहिये। केशव का समय संस्कृत साहित्य-शास्त्र के इतिहास का वह युग है जिसमे संकलन और विश्लेषण का काम जोरो पर था। प्राचीन रसमार्ग उद्भट आलंकारिको और रीति-मार्गियो के प्रचंड आक्रमणो को सहकर भी मम्मट आदि नवीन रसमार्गियो के प्रयत्न से अपने उचित स्थान पर प्रतिष्ठित हो गया था। ध्वनि-मार्ग आगे चलकर उसकी प्रतिद्वन्द्विता मे प्रतिष्ठित हुआ था परन्तु वह भी उसका पोषक बन बैठा। यद्यपि रस के वास्तविक स्वरूप के विषय मे अप्पय दीक्षित और पंडितराज गंगाधर के वाद-विवाद के लिए अभी स्थान था पर फिर भी शास्त्रकारो ने यह निश्चित कर लिया था कि काव्य मे सारभूत अंश या वस्तु रस है और अलकार, रीति और ध्वनि अपनी शक्ति के अनुसार उसके सहायक है, विरोधी नही। फलतः साहित्यकार अब विरोधी मतो से बहुत कुछ विरोधी अंश निकालकर साहित्यशास्त्र के भिन्न-भिन्न अंगो के सामञ्जस्य से एक पूर्ण पद्धति बना रहे थे। विश्वनाथ का साहित्यदर्पण और उसके समान ग्रन्थ इसी प्रयत्न के फल थे। केशव इसी पिछले ढंग के आचार्यो मे है। संस्कृत से चली आती हुई परम्परा को उन्होने हिंदी मे स्थान दिया। परन्तु उनके बाद

रीति-प्रवाह को विशेष विकसित करने का श्रेय चिन्तामणि, भूषण (शिवराजभूषण, १६६६-७३) और मतिराम (ललितललाम, १६६४, रसराज) को मिला।

मुसलमानो की धार्मिक भाषा तो अरबी थी, परन्तु दरबार की भाषा इस समय फारसी थी। इस भाषा का बहुत बड़ा साहित्य मुसलमानों के भारतवर्ष के प्रवेश के पहले ही बन चुका था। बहुत से हिन्दुओ ने जो दरबार से सम्बन्धित थे, यह भाषा सीखी। इस काल मे उत्तर भारत मे उर्दू का विकास हुआ तो वह भी फारसी के नमूने पर। फारसी भाषा का कलापक्ष अब तक बहुत उन्नत हो चुका था। भावपक्ष के दृष्टिकोण से उसमें दो धाराएँ थीं :

१—सूफी प्रेम-धारा
२—लौकिक प्रेमधारा (शृंगार-धारा)

सूफी विचारावली का प्रभाव हिन्दी प्रांत की जनता और उसकी भाषा पर इस काल से पहले ही सूफी संतो द्वारा (कवियों या काव्य-पुस्तको द्वारा नहीं) पड़ चुका था। इससे हिन्दी-साहित्य मे एक नवीन धारा चल पड़ी थी जिसे हमने सूफी धारा या प्रेम-मार्गी धारा कहा है। यह इस काल मे भी चल रही थी। अतएव दरबार के प्रभाव से फारसी साहित्य के वाह्यरूप (कलापक्ष) की चमक हिन्दू कवियो की आँखो मे चकाचौंध पैदा करने लगी। लौकिक प्रेमधारा या शृंगारधारा न भाव मे, न कलापक्ष मे ही भारतीय कवि के लिए नई चीज़ थी। इतिहास के गुप्तकाल के संस्कृत साहित्य में इस प्रकार का साहित्य विकसित हो चुका था। कलापक्ष पर अलंकार, रस आदि विषयक संस्कृत ग्रन्थ सामने थे। फारसी कवियो से होड़ लेने के लिए इनसे सहायता ली गई और कुछ इस कारण से, कुछ जनता के उच्च वर्गों की

विलासप्रियता से रीतिकालीन अलंकृत धारा चल पड़ी। यह धारा संस्कृत और बाद में प्राकृत में बहुत काल (सम्भवतः सात्रिक या राजपूत काल तक) तक चलती रही थी और इसकी अंतिम देन गाथा सप्तशती, आर्या सप्तशती और शृंगार रस के मुक्तक थे। नये कवियों ने आचार्यों के कलापक्ष-संबंधी नियम और काव्य-साहित्य दोनों को अपने सामने रखा। यह प्रभाव अकबर के समय से शुरू हुआ और उसके राजकाल (१५५६—१६०५) तक अच्छी तरह विकसित हो गया। जो कवि राज-दरबार से सम्बन्धित थे, उनपर यह प्रभाव विशेष रूप से पड़ा। वहां से आरंभ होकर यह प्रभाव बाहर के कवियों में फैला। अकबर के दरबार के कवि थे तानसेन (१५६०—१६१०), राजा टोडरमल (१५८३—१५८६), बीरबल (१५२८—१५८३), गंग आदि। मुगल राजाश्रय हिन्दी के कवियों को औरंगजेब के समय (१७०७) तक मिलता रहा। धीरे-धीरे दो राजाश्रय विकसित हो गये थे—एक तो मुसलिम प्रांतीय शासकों के दरबार, दूसरे हिन्दू राजे जिन्होंने मुगल सम्राटों की नीति से प्रोत्साहित होकर कवियों को आश्रय देना शुरू किया था। दोनों की रुचि प्रायः एक-सी ही थी, इसलिए संस्कृति में भेद होते हुए भी दोनों राजाश्रयों के काव्य में दृष्टिकोण का कोई अंतर नहीं है। औरंगजेब के समय (१६५८—१७०७) में हिन्दी रीति-कविता की अवनति हुई। १७वीं शताब्दी के अंतिम दिनों में यह बात स्पष्ट होने लगती है और १८वीं शताब्दी के मध्य तक रीतिकाव्य थोड़ी मौलिकता भी खोकर चट्टान की तरह ठोस और दृढ़ हो जाता है। कवियों की संख्या पर्याप्त रहती है परन्तु किसी का व्यक्तित्व दूसरे के व्यक्तित्व से ऊंचा नहीं है। इने-गिने विषयों पर ही पिष्टपेषण किया गया है।

इस प्रकार रीतिकाव्य का जन्म और विकास हुआ। इस

काव्य के संबन्ध में हमने जो अब तक कहा है, उसे संक्षेप मे, सुस्पष्ट रूप से यों रख सकते है—

१—रीतिकाव्य मे साहित्य-चर्चा के नाते रीति के तीन अंगो पर लिखा गया—रस, अलंकार, ध्वनि। रस की शास्त्रीय व्यवस्था सबसे प्राचीन है। यह भरतमुनि के काव्यशास्त्र मे मिलती है। वास्तव मे रस का प्रधान केन्द्र नायक-नायिका है। अलंकारशास्त्र का संबन्ध केवल भाषा से है, अतः उसका माध्यम काव्य है। भरतमुनि के नाट्य-शास्त्र मे केवल कुछ अलंकारो की चर्चा प्रसंग-वश कर दी गई है परन्तु उसका विशेष विवेचन बाद मे हुआ। ध्वनि-सम्प्रदाय (प्र० आनन्दवर्द्धनाचार्य) ने दोनो को एकत्र किया। उसने कहा कि रस ध्वनित भी हो सकता है, अतः जहाँ केवल अलंकार है, वहीं रस की ध्वनि भी उत्पन्न की जा सकती है। इस व्याख्या के अनुसार फुटकल पदो मे अलंकार के साथ रस का सृजन भी संभव समझा गया।

यह हम कह चुके है कि 'भावधारा के रूप में शृंगार रस प्रधान है, परन्तु शास्त्रीय दृष्टि से अलंकारो को ही विशेष महत्त्व मिला है, रस को नहीं। वास्तव मे रस, अलंकार और ध्वनि को एक स्थान पर एकत्रित करने की चेष्टा की गई है जो सब जगह समान रूप से सफल नहीं हुई है।

संस्कृत अलंकारशास्त्र मे आचार्य व्याख्याता होता था, कवि नहीं। वह अपने मत के समर्थन में प्रसिद्ध रचनाओं से उदाहरण उपस्थित करता था। मुक्तको से इस प्रकार के उदाहरण उपस्थित करना सहल था, इसलिए प्राकृत और संस्कृत के सैकड़ों मुक्तक पद और श्लोक उद्धृत किये गये। यहाँ हिन्दी मे एक दूसरी ही रीति चली। कवित्व और आचार्यत्व का मेल करने का प्रयत्न हुआ। ग्रंथकर्ता उदाहरण भी स्वयम् गढ़ता था। रीतिकाव्य का एक बड़ा भाग लक्षणो को स्पष्ट करने के लिए लिखा गया है, परन्तु

[illegible]म अध्ययन करने से यह पता चलता है कि हिन्दी रीतिकाल [illegible] कवियों को रीति की शुद्धता की चिंता और अन्वेषण की प्रवृत्ति [illegible]नी नहीं थी, जितनी किसी प्राचीन रीतिग्रंथ का सहारा लेकर [illegible]तंत्र रूप से लक्षण कहकर रचना करने की।

२—इसी रीति-विवेचन से एक चौथी धारा कामशास्त्र की [illegible]ल गई थी। ऐसा संस्कृत काव्य में ही हो चुका था। संस्कृत के [illegible]वि प्रेम-प्रसंग में कामशास्त्र के ज्ञान का पर्याप्त परिचय देते थे। [illegible]न्दी में प्रेम के व्यावहारिक प्रसंगों में इससे सहायता ली गई।

३—नाट्यशास्त्र और रसशास्त्र से नायिका-भेद लिया गया [illegible]र उसे कल्पना के बल पर बड़ी दूर तक विकसित किया गया।

४—परन्तु रीति-अंगों के अतिरिक्त संस्कृत काव्यरूढ़ियाँ, स्त्री-[illegible]गों के लिए बंधे उपमान, कवि-प्रसिद्धियाँ, छंद सभी विषयों से [illegible]ति-काव्य पर संस्कृत-साहित्य का विशेष आभार है।

५—इसके अतिरिक्त राधाकृष्ण का प्रेम-प्रसंग और वंशी [illegible]दि के प्रसंग कृष्ण-काव्य और तत्कालीन कृष्ण-भक्ति से आ[illegible]ये। केशवदास ने कृष्ण को स्पष्ट रूप से शृङ्गाररस का देवता [illegible]ना है। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि अधिकांश रीति-[illegible]व्य राधा-कृष्ण का आलंबन लेकर चलता है।

६—रीतिकाव्य में काव्य-कौशल (कला) का महत्त्व अधिक [illegible] गया। रस, अलंकार और नायिकाभेद ही सब कुछ हो गये, [illegible]व की मौलिकता कुछ नहीं रही। फुटकल पदों की इसीसे [illegible]रमार हो गई। सारा रीतिकाव्य मुक्तक रूप में उपस्थित है—ये [illegible] दोहा, सवैया, कवित्त छंद में ही अधिक हैं। इनमें यमक, [illegible]नुप्रास जैसे कला-प्रधान अलंकारों पर भी व्यापक दृष्टि डाली [illegible]है।

७—जिन कवियों ने लक्षणों के उदाहरण के रूप में अपनी [illegible]विता उपस्थित नहीं की, वे भी रीति-ग्रंथों से प्रभावित थे।

८—रीतिकाव्य ने संस्कृत की सारी रूढ़ियाँ नहीं अपनाईं परन्तु उसने स्वयं इस प्रकार की कुछ रूढ़ियाँ गढ़ ली जिनसे कवि बराबर प्रभावित होते रहे। कवियों की इस अनुकरणवृत्ति का फल यह हुआ कि वह उत्तरकालीन संस्कृत आचार्यों की दुनिया मे रहने लगे या उन्होंने अपनी अलग दुनिया बना ली। अलङ्कारों और नायिका-भेद के बाहर की दुनिया के उन्हे दर्शन नहीं हुए। उन्होंने अपने स्वतंत्र निरीक्षण और स्वतंत्र चिंतन की बलि कर दी। स्वतंत्र चिंतन की ही नहीं स्वतंत्र व्यक्तित्व की भी। फिर भी प्रत्येक कवित्त-सवैये के अंत मे कवि अपनी छाप लगा ही देता है, जैसे उसका अपना व्यक्तित्व हो, उसका नाम भुलाया न जा सके।

९—परन्तु यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि इस २००-२५० वर्ष के कवियो के काव्य को क्या रस, अलंकार, नायिकाभेद के उदाहरण के रूप मे ही समझा जाये ? यह भूल होगी। सारे रीतिकाल में रस और अलंकारो के वैज्ञानिक अथवा शास्त्रीय विवेचन की प्रवृत्ति कहीं भी नहीं दीखती। उन्होंने विवेचना के लिए भी दोहे-जैसे छोटे छंद का प्रयोग किया। अतः स्पष्ट है कि विवेचना उनका ध्येय नहीं था। जिस तरह पिछले भक्त-कवि राधाकृष्ण की लीला को कविता का बहाना समझते थे, उस तरह इस युग के कवि लक्षणों को बहाना-मात्र समझते थे। सच तो यह है कि उन्हें एक अच्छा सहारा हाथ लग गया था। इसी से वे अपने उदाहरणों मे अधिक सतर्क भी नहीं जान पड़ते। इसी से कहीं-कहीं उन्हे जब यह जान पड़ता है कि उनका उदाहरण उस अलंकार मे नहीं आता जिसके उदाहरण-स्वरूप वह उपस्थित, किया गया है तो वे एक नया अलंकार-भेद गढ़ लेते है।

१०—उन कवियों ने लोकजीवन को अधिक निकट से देखा। विशेषकर जहाँ तक शृङ्गार का सम्बन्ध है। परन्तु उन्होंने

बहुधा उसे राधाकृष्ण की प्रेमलीला के रूप में ही हमारे सामने रखा। वास्तव में अलौकिक शृङ्गार की लौकिक प्रतिष्ठा भक्तों ने ही कर दी थी। कृष्ण, गोपियों—राधा की प्रेम-विरह और अभिसार कथाएँ लोकजीवन के प्रेम-विरह और अभिसार से मिल गई थीं। रीतिकाल में भक्ति की तन्मयता कम रही, काव्य और कला का पक्ष अधिक दृढ़ होने के कारण उसका रूप ही बदलकर सामने आया। भक्तों की कृपा से लौकिक जीवन में अलौकिक और अलौकिक जीवन में लौकिक देखने लगे थे। शृङ्गार के समुद्र में कहीं-कहीं इनके भक्तहृदय की झलक भी इसमें मिल जाती है, तो हम आश्चर्य करते हैं, परन्तु यह आश्चर्य की बात नहीं। सच तो यह है कि रीतिकवियों ने काव्यपक्ष में शास्त्रीय परम्परा (रस, अलङ्कार) का नेतृत्व स्वीकार कर लिया था। परन्तु भावपक्ष में वे लोकजीवन और कृष्णचरित को ही लेकर चल रहे थे।

धीरे-धीरे काव्य व्यवसाय हो गया। जनरुचि बिगड़ने लगी। राजाश्रय पहले ही बिगड़ा हुआ था। बिहारी के शब्दों में—

कली अली सों बिध रह्यो आगे कौन हवाल ?

ऐसी परिस्थिति में, राजकीय विलासता, युग की शिथिलता, बिगड़ी जनरुचि, संस्कृत आचार्यों का प्रभाव और फारसी कविता के संपर्क से होकर हिन्दी रीतिकाव्य-धारा बही। केशवदास की रसिकप्रिया और कविप्रिया की परिपाटी नहीं बनी, परन्तु रस-वादी चिंतामणि के प्रवेश करते ही कविता का अखंड रसस्रोत बह निकला। चिंतामणि के अतिरिक्त अन्य प्रमुख कवि हैं—सेनापति, बिहारी, मतिराम, कुलपति मिश्र, महाराज जसवंतसिंह, सुखदेव मिश्र। परम्परा के प्रभाव से जिस कुत्सापूर्ण काव्य का निर्माण हो रहा था, केवल सेनापति ही उसमें कुछ ऊपर उठे हुए हैं। उनके प्रकृति-वर्णन की स्वाभाविकता और सरसता सारे रीति-काव्य में नहीं मिलेगी। षट्ऋतु-वर्णन में अधिकांश कवि उद्दीपन

भाव का निरूपण ही सामने रखते थे। परन्तु सेनापति ने प्रकृति के स्वतंत्र चित्र दिए हैं जिनमें काव्य-प्रसिद्धियों और कल्पना को भी उचित स्थान मिला है।

उन्नीसवीं शताब्दी के साथ राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ बदलीं। देश मुसलमान शासकों के हाथ से निकलकर अंग्रेज़ शासकों के हाथ में चला गया। बड़े-बड़े राज्य हड़प लिये गये। छोटे-छोटे राज्य और जागीरदार रह गये। कवियों के यही मात्र आश्रय थे। इस शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे हम हिंदी कविता में कोई परिवर्तन नहीं पाते—रीति, शृंगार, वैष्णव, संत सभी काव्य धाराएँ मरणोन्मुख हैं, परन्तु चल रही हैं। राधाकृष्ण को लेकर शृङ्गार-काव्य की रचना की मात्रा इस काल मे भी कम नहीं है। इस समय के मुख्य कवि पद्माकर, ग्वाल, लछिराम, गोविन्द गिलाभाई, प्रतापसाहि और पजनेस हैं। इन कवियों ने भाषा के नवीन ढंग के प्रयोग से अपने काव्य में पिछले कवियों से कुछ विशेषता लाने की चेष्टा की है—शब्द-सौन्दर्य पर बल दिया जा रहा है, भावानुकूल शब्द-योजना, रस-पोषक भाषा का प्रयोग, उक्तियों की नवीनता और रसिकता, अनुप्रास एवं वर्ण-मैत्री का प्राधान्य—ये बातें नई दिशा को सूचित करती है। कवि भाव की मौलिकता की अधिक परवाह नहीं करता, परन्तु उसके भाषा के नवीन प्रयोगों ने भाव में भी कुछ न कुछ मौलिकता उत्पन्न कर दी है। इसी समय कुछ ऐसे कवियों के दर्शन होते हैं जिन्होंने प्रेम के प्रकृत रूप को समझा था और भाषा की चहल-पहल मे न पड़कर प्रकृत रूप से ही अपने काव्य को उपस्थित किया। ये कवि बोधा, घनानन्द, रसखान आरम्भ की उस परम्परा को आगे बढ़ाते हैं जो पूर्व रीतिकाल में शास्त्रीय ज्ञान की अपेक्षा अनुभूति के आधार पर श्रेष्ठतम काव्य की सृष्टि कर चुके थे। इस

र्द्ध के सबसे महान् कवि हरिश्चन्द्र' (१८५०—८५) है।

न्होंने रीतिशास्त्र और परिपाटी से मुक्त रह कर भी बहुत-सा व्य लिखा, यद्यपि परिपाटीबद्ध काव्य भी कम नहीं है। हाँ, म के प्रकृत रूप को उन्होंने शास्त्रों से नहीं, अपने अनुभव से मझा था।

इस प्रकार हम देखते है कि रीतिकाव्य कुछ विशेष परिस्थितियों की उपज था और उसने २५० वर्ष तक हिंदी कविता के क्षेत्र मे एकच्छत्र राज किया। १६५० ई० से लेकर १९०० ई० तक एक विशेष प्रकार की विचारधारा काव्य-जगत मे चलती रही जो अन्य काव्यधाराओं से अनेक प्रकार भिन्न थी। इस रीतिकाव्य के आरंभ मे केशवदास आते है और अंत मे हरिश्चन्द्र और श्रीधर पाठक। हरिश्चंद्र और श्रीधर पाठक ने खड़ी बोली की कविता का प्रवर्तन भी किया, परंतु वे अपने ढंग पर रीतिकाव्य के अंतिम कवि थे। रीति-कविता फिर भी लिखी जाती रही और बीसवीं शताब्दी मे भी जगन्नाथप्रसाद रत्नाकर जैसा सुन्दर कवि हमें मिल सका। परंतु जनता का बल उसे उसी तरह प्राप्त नहीं रहा, जिस तरह पिछली ढाई शताब्दी मे।

रीतिकाल की कविता मे मनुष्य की कुछ महत्वपूर्ण प्रवृत्तियाँ प्रकाशित हुईं। ये प्रवृत्तियाँ सब देशों सब कालों में सत्य हैं। इसी से रीतिकाव्य की कविता का सदा महत्व रहेगा। ये प्रवृत्तियाँ थीं—१ प्रेम, विलास और दाम्पत्य जीवन की चुहलों का वर्णन, २ सौन्दर्य-दर्शन, ३ पांडित्य-प्रदर्शन, ४ भाषा का व्यंगात्मक (लाक्षणिक) और कला-प्रधान प्रयोग। प्रत्येक युग के काव्य मे इस प्रकार की प्रवृत्तियाँ रहती है। परंतु रीतिकाल में यही प्रवृत्तियाँ सब कुछ बन गई थीं। जिस प्रकार मनुष्य केवल दो चार प्रवृत्तियों को लेकर चले तो अपूर्ण है, इसी प्रकार रीतिकाव्य भी केवल कुछेक प्रवृत्तियों को ले चलने के कारण अपूर्ण है। परंतु अपने मे तो फिर भी वह बहुत कुछ पूर्ण है ही।

हिंदी-काव्य के आदिकाल मे ही इन प्रवृत्तियों की झलक मिल गई थीं। चारणकाव्य और सामंती काव्य मे यही सब प्रवृत्तियाँ है, परंतु उसका मूल स्वर वीरभाव होने के कारण ये प्रवृत्तियाँ इतनी पुष्ट नहीं है। विद्यापति के काव्य में हम पहली बार ये सब प्रवृत्तियाँ अपनी पराकाष्ठा मे पाते है। राधाकृष्ण के नाम तो केवल नाम-मात्र है, विद्यापति के काव्य मे उनके पीछे आध्यात्मिकता बहुत कम है। नायक-नायिका का बहुविधि भाव-विलास ही 'पदावली' के गीतों का विषय है। यह अवश्य है कि विद्यापति भागवत और जयदेव से प्रभावित है परंतु उनकी राधा-कृष्ण-कथा का सारा ढाँचा ही दूत-दूतियों की चुहलों, पूर्वराग, मान, अभिसार और मिलन के प्रसंगों पर खड़ा है। विद्यापति का समय १३७५ ई०—१४४८ ई० तक है। सूरदास का समय १४८६-१५८५ तक है। यह स्पष्ट है कि विद्यापति और सूरदास दोनों पर रीति विचारधारा का गहरा प्रभाव है। यदि विद्यापति के बाद अगली शताब्दी मे ब्रज के धार्मिक आन्दोलन उठ खड़े नहीं होते, तो १४००-१६०० तक के काव्य मे हम रीति-कविता का विशेष विकास पाते। परन्तु इन धार्मिक आन्दोलनों ने जनता और कवियों का ध्यान उपरोक्त प्रवृत्तियों से हटा कर धर्म की ओर खींचा। अतः रीति-काव्य की धारा कृष्णभक्ति काव्य मे होकर बहने लगी और उसका रूप विकृत हो गया। वास्तव मे कृष्णभक्ति-काव्य मे प्रच्छन्न रूप से रीति और शृंगार का आग्रह है। राधा और गोपियों को लेकर कृष्ण के जो प्रेम-प्रसंग मिलते है, उन्हें जहाँ धर्मप्राण साधक रूपक और अध्यात्म के रूप मे ग्रहण करता था, वहाँ साधारण रसिक रीतिकाव्य के रूप में उससे आनन्द लेता था। जब एक शताब्दी बाद यह धार्मिक प्रभाव कम हो गया, तो रीति-काव्य की धारा अपने असली रूप मे सामने आई।

जब यह धारा नये स्वतंत्र रूप मे सामने आई, तब कृष्ण

काव्य में बहुत कुछ ऐसा कहा जा चुका था जो रीतिकाव्य के भीतर आना चाहिए था। वाग्वैदग्ध्यपूर्ण नयन के पद, मान, मानमोचन, खंडिता, स्थूल-मिलन और वियोग के पद, पांडित्य-पूर्ण दृष्टिकूट और राधाकृष्ण के सौन्दर्य-वर्णन के पद रीतिकाव्य की बहुत-सी सामग्री को नये रूप में उपस्थित कर चुके थे। अतः कवियों ने एक नई परिपाटी से काम लिया। उनकी दृष्टि मम्मट, पंडितराज जगन्नाथ और अन्य आचार्यों पर गई और उन्होंने साहित्यशास्त्र की आवश्यकता समझते हुए रीति के हिंदी ग्रन्थ उपस्थित करना आरंभ किये। कवि-कर्म इतना ही रह गया कि संस्कृत के ग्रन्थों में जहाँ उदाहरण प्रसिद्ध ग्रन्थों के रहते थे, वहाँ ये नये कवि धड़ल्ले से अपने रचे उदाहरण देने लगे। इस प्रकार रीतिकाव्य का वह बड़ा भाग तैयार हो गया जिसे हम उदाहरण-काव्य कह सकते हैं। इनमें न कवि की स्वतंत्र वृत्ति का परिचय मिलता है, न उसके आचार्यत्व का। कुछ दूसरे कवि इस कवि-कर्म तक ही नहीं रह गये। उन्होंने प्राकृत मुक्तक काव्य (आर्यासप्तशती, गाथासप्तशती) और संस्कृत के सुभाषितों को सामने रखकर स्वतंत्र रूप से प्रेम-विलास को लेकर मुक्तकाव्य की सृष्टि की। वास्तव में हम पहले कवियों का कविकर्मी कहेंगे, इन दूसरे कवियों को कवि। इन कवियों और कवि-कर्मियों का इतना बड़ा भंडार हिंदी साहित्य में सुरक्षित है कि अभी उस पर सम्यक् विचार ही नहीं हो सका है। इसकी अपनी त्रुटियाँ हैं, अपनी दुर्बलताएँ हैं, परन्तु बहुत कुछ ऐसा भी जो सुन्दर है और जो काल के झोंकों में भी बचा रह सका है। सौन्दर्य, प्रेम, विलास और जीवन की तरुणाई की अनेक रंगीली परिस्थितियों से अनुरंजित हिंदी का रीतिकाव्य [illegible] रहा, परन्तु बहुत कुछ अंशों में सुन्दर और स्वस्थ भी है, आज यह कहना कोई बड़े साहस की बात नहीं।

केशव के वीरकाव्य के कुछ नमूने

रतन-बावनी

दूहा

भूपिक-वाहन गज-वदन एक-रदन मुद-मूल
वदंहु गण-नायक-चरण शरण सदा मुख-मूल
ओड़छेन्द्र मधुशाह सुत रतनसिंघ यह नाम
बादशाह सौ समर करि गये स्वर्ग के धाम

तिनकौ कछु वरनत चरित, जा विधि समर सु-कीन
मारि शत्रु-भट विकट अति, सैन सहित परवीन

युद्ध का कारण

जिहि रिस कम्पहिं रूस रूम, कम्पहिं रन अनल
जिहि कम्पहि खुरसान शान तुरकान विहूरह
जिहि कम्पहि ईरान तूर्व तूरान वलख्खह
जिहि कम्पहि बुख्खार तार तातार सलख्खह

राजाधिराज मधु शाह नृप, यह विचार उद्दित भयव
हिन्दुवान धर्म रच्छक समुझि, पास अकब्बर के गयव

दिल्लीपति दरबार जाय मधुशाह सुहायव
जिमि तारन के माँह इन्दु शोभित छवि छायव
देख अब्बर शाह उच्च जाया तिन केरो
बोले बचन विचारि कहौ कारन यहि केरो

तब कहत भयव बुन्देलमणि, मम सुदेश कटकि अवन
करि कोप आप बोले बचन, मैं देखौं तेरो भवन
सुनत वचन मधुशाह शाह के तीर समानह
लिखिव पत्र ततकाल हाल तिहि वचन प्रमानह
जुरहु जुद्ध-करि-क्रुद्ध जोरि सेना इक ठौरिय
तीर-तीर तन रोर शोर करिये चहुँ ओरिय
तुव भुजन भार है कुँवर यह, रतनसेन शोभा लहव
कछु दिवस गरो गढ आडछो दिल्लीपति देहन चहय

दोहा

सुनत पत्र मधुशाह को रतनसेन ततकाल
करिय तयारी जुद्ध की रोस चढो जिन पाल

दोहा

साजि चमू मधुशाह सुत, हरवल दल कर अग्र
हय गय पयदर साजि सकल, छाड़ि ओड़छो नग्र

कुमार उवाच

रतनसेन कह बात सूर सामत सुनिज्जिय
करहु पैज पनवारि परि सामन्तन लिज्जिय
वरिय स्वर्ग अच्छारिय हरहु रिपु गर्व सर्व अन
जुरि करि सगर आज सूर मंडल भेदहु सब
मधुशाह-नंद इमि उच्चरई, खट खट पिटहु फरहु
करहु सुदत हथियान के, मर्दहु दल पर प्रन धरहु
जहँ असान पट्टान गान। हियवान सु उट्ठिव
तहँ केशव काशी नरेश दल रोष भरि छिव
जहँ, तहँ पर जुरि जोर ओर चहुँ दुदुभि बज्जिय
तहाँ विकट भट सुभट-हटक घोटक तन तज्जिय
कोउ निवरौं पग खण्ड चलो कोइ मार-मार तहँ
कोउ निवरौं पग आठ चल्यो कोइ अग्र अग्र लहँ

केशव के वीरकाव्य के कुछ नमूने

रतन-बावनी

दूहा

भूषिक-वाहन गज-वदन एक-रदन मुद-मूल
बंदहु गण-नायक-चरण शरण सदा सुख-मूल
ओड्छेन्द्र मधुशाह सुत रतनसिंघ यह नाम
बादशाह सौं समर करि गये स्वर्ग के धाम

तिनकौं कछु बरनत चरित, जा विधि समर सु-कीन
मारि शत्रु-भट विकट अति, सैन सहित परवीन

युद्ध का कारण

जिहि रिस कम्पहि रूस रूम, कम्पहिं रन अनल
जिहि कम्हहि खुरसान शान तुरकान विहूरह
जिहि कम्पहि ईरान तूर्व तूरान वलख्खह
जिहि कम्पहि बुग्खार तार तातार सलख्खह

राजाधिराज मधु शाह नृप, यह विचार उद्दित भयव
हिन्दुवान धर्म रच्छक समुझि, पास अकब्बर के गयव

दिल्लीपति दरबार जाय मधुशाह सुहायव
जिमि तारन के माँह इन्दु शोभित छवि छायब
देख अब्बर शाह उच्च जाया तिन केरो
बोले बचन विचारि कहौ कारन यहि केरो

तव कहत मयव बुन्देलमणि, मम सुदेश कटकि अवन
करि कोप आप बोले बचन, मै देखौ तेरो भवन
सुनत वचन मधुशाह शाह के तीर समानह
लिखिव पत्र ततकाल हाल तिहिं वचन प्रमानह
जुरहु जुद्ध-करि-क्रुद्ध जोरि सेना इक ठौरिय
तीर-तीर तन रोर शोर करिये चहुँ ओरिय
तुव भुजन भार है कुँवर यह, रतनसेन शोभा लहव
कछु दिवस गरो गढ आइछो दिल्लीपति देहन चहय

दोहा

सुनत पत्र मधुशाह को रतनसेन ततकाल
करिय तयारी जुद्ध की रोस चढो जिन पाल

दोहा

साजि चमू मधुशाह सुत, हरवल दल कर अग्र
हय गय पयदर साजि सकल, छाड़ि ओड़छो नग्र

कुमार उवाच

रतनसेन कह बात सूर सामंत सुनिज्जिय
करहु पैज पनवारि परि सामन्तन लिज्जिय
वरिय स्वर्ग अच्छारिय हरहु रिपु गर्व सर्व अब
जुरि करि सगर आज सूर मंडल भेदहु सब
मधुशाह-नंद इमि उच्चरई, खंड खंड पिंडहु करहुँ
कहहुँ सुदंत हथियान के, मर्दहु दज यह प्रन धरहुँ
जहँ अमान पट्टान गान। हियवान सु उट्ठिव
तहँ केशव काशी नरेश दल रोप भरि द्विव
जहँ, तहँ पर जुरि जोर ओर चहुँ दुंदुभि वजिय
तहाँ विकट भट सुभट-छुटक घोटक तन तजिय
कोइ निवहौ पग खण्ट चलौ कोइ सात-सात तहँ
कोइ निवहौ पग आठ चल्यो कोइ अग्ग अंक लह

दसह पाय दसहू दिसह, साथी सबहि मटक्कियह
इक मधुकुर शाह-नरेन्द्र सुत, सूर कटक्क अटक्कियह
दीठि पीठि तन फेर पीठ तन इक्क न दिक्खिय
फिरहु फिरहु फिर फिरहु कहत दल सकल उमग्गिय
ठान-ठान निज शान मुरीक पाठान, जुवाए
काढ-काढ तरवार तरल ताछिन तट आए
इक इक्क घाउ घल्लिव सवन, रतनसेन रनधीर
जनु ग्वाल बाल होरी हारपि, खडल छोर अहीर कहँ
दोहा—रूपे शूर सामंत रण, लरहिं प्रचारि-प्रचारि
पिच्छल पग नहि चलहि कोउ, जूझन चलहिं अगारि
मरण धारि मन लियौ वीर मधुकर सुन आयौ
विचल नृपति सब मलेच्छ, देखि दल धर्म लजायौ
कट्ठु कुभष्ष सब करिय कुवॅर रूप्यहु जुर जंगहि
तिल तिल तन कट्टिइव मुरकि फेरौ नहिं अंगहि
कहि केशव तन बिन शीश है, अतुल पराक्रम कमध किय
सोइ रतनसेन मधुशाह सुव तव कृपाल दुहु हत्थ लिय
दोहा—चले शूर सामंत सव, धरम वारि प्रभु काम
कोपेहु तहँ मधुशाह-सुव, ज्यो रावण पर राम
करि श्रीपतिहि प्रणाम इष्ट अपने सव बुल्लिव
पातशाह सुनि खबर आय बीचहि दल ढिल्लिव
सकल समिटि सामत गहिव तब जाइ बाट कहि
लहिव जुद्ध अगवान शूर सब चले सामुहहि
रजपूत दुट्टि धरणी गहहि, केशव रण तहँ हंकियव
सोइ रतनसेन महाराज जू, विकट भट्ट वहु कट्टियव

दोहा

रतनसेन हय छांडियौ, उत कूदे सामन्त
नोन उवारन शीश ते, कियो लरन कौ तन्त

साथी लोगन कौ वचन

बुल्लिव छत्तिय वचन सुनहु महाराज सु-कानहि
आप जुद्ध कौ छाड़ि जाहु सुरपुर तिहि ठायहि
हम करिहैं संग्राम आज आवहिं तुव काजहि
राख धर्म तुम सुभग त्यागि आपुन परिवारहि
किज्जिय सुराज अरिमूल हनि, केशव राखहि लाज रन
तुव नौन उवारहिं खिन्त महि, यश गावहिं कवि तुम धरन

है वाणी आकाश सुनहु सब शूर संत यहि
रहहुँ तुमारे साथ मनहि करि राखहु अग्रहि
राखहु पति कुल लाज आवहि खग्गन तनु खंडहु
जाहु मलेच्छ न इक सबै रण सैन विहंडहु
कहि केशव राखहु रणभुवन, जियत न पिच्छल पग धरहु
तुइ रतनसेन कुल लाड़िलहु, रिपु रण मे कट्टहि करहु
सुनि रतन सेन मधुशाह सुव, पंच सथ्य तहिं लज्जिये
कहि केशव पंचन संग रहि, पंच भजै तहँ भज्जिये

विप्र उवाच

लोकपाल दिगपाल जिते। भुवपाल भूमि गुनि
दानव देव अदेव सिद्ध। गन्धर्व सर्व मुनि
किन्नर नर पशु पच्छि जच्छ रच्छस पन्नग नग
हिंदुन तुर्क अनेक और जल थलहु जीव जग
सुरपुर नरपुर, नागपुर, सब सुनि केशव सज्जियहु
सुनि महाराज मधुशाह सुव, को न जुद्ध जुरि भज्जियहु

कुमार उवाच

महाराज मलखान ठान लगि प्राणन छंडिय
गहिव तरल तरवार तुरत अरि दल वल खंडिय

राजकाज धरि लाज लोह लरि तुरुक विहडिव
खरगसेनि हनि तासु वासु वैकुण्ठहि मंडिव
परताप रुद्र परताप करि, अरि कुल त्रिनु लग्यत कियहु
कहि केशव नरसह युद्ध करि, इन्द्रासन उद्दित लियहु

विप्र उवाच

द्विज मागे सो देव विप्रकौ वचन न खंगिय
द्विज बोलै सो करिय विप्र कौ मान न भगिय
परमेश्वर अरु विप्र एकसम जानि सु लिज्जिय
विप्र बैर नहिं करिय विप्र कहँ सर्वसु दिज्जिय
सुनि रतनसेन मधुशाह सुव, विप्र बोलकिन लिज्जियहु
कहि केशव तन मन वचन करि, विप्र कहय सुई किज्जिहु

कुमार उवाच

पतिहिं गए मति जाय गए मति मान गरै जिय
मान गरे गुन गरै गरे गुन लाज जरै जिय
लाज जरे जस भजै जस धरम जाइ सब
धरम गये सब करम गये पाप बसै तब
पाप बसे नरकन परै, नरकन केशव को सहै
यह जान देहुँ सरबसु तुम्हैं, सुपीठ दएँ पति ना रहै

दोहा

पति मति अति दृढ़ जानि कर, सुनि सब बचन समाज
राम-रूप दरसन दियौ, केशव त्रिभुवन राज

कुमार उवाच

बिना लरे जो चलहुँ सुखद सुन्दर तब को कह
जो लरि चलौ सदेह लोग भागौ कहिं मो कह

तातै जुद्धहि जुरहुं जुद्ध जोधन अँग नॉऊ
भुवि राखौ दै बाहु सीस ईसहिं पहिराऊँ
राखहुँ शरीर खिन्तहि खमरि, नहि केशव नेकहु हलौ
इहि भाँति लोक अवलोक करि तबहिं सुतुव सथ्थहि चलौ

श्री परमेश्वर उवाच

प्रथम धरेहु अवतार तै जु मेरे व्रत किन्नव
जीवन तनु धन मरदि तबहि मेरौ प्रण लिन्नव
प्रण प्राणन कौ बाद बहुत मेरे मन भायौ
अब केशव इहिकाल अबहि हौ भलौ रिझायौ
सुनि महाराज मधुशाह सुव, जदपि लोभ नहिं तौ हियव
तदपि सु मंगहि मंगने, हौ प्रसन्न तोकहुं भयव

कुमार उवाच

लै कर वर तब वीर सभा मडल सन बुल्लिय
तुम साथी समरथ्थ शत्रु कहँ रुत्त न डुल्लिय
लाज काज धरि लाह लोह लरि लरि यश लिज्जहु
विकट कटक मै हटक पटक भट भुवि मँह दिज्जहु
यह अनूप मेरौ वचन, केशव चित धरि सुनहु सब
मरहु तौ मो सथ्थहि चलहु, भज्जहु तौ भजि जाव अब

साथ के लोगन कौ वचन

तुम बालक हम वृद्ध इते पर जुद्ध न देखे
तुम ठाकुर हम दास कहा कहिये इहि लेखे
कहि आवै सो कहौं कहा हम तुमरौ करिहैं
हम आगे तुम लरौ तु अब हम बूड़ि न मरिहैं
कहि केशव मर्दहिं रारि रण, करि राखैं खित्तहि भवन
सुनि रतनसेन मधुशाह सुव, पुनि न होइ आवागवन

राजकाज धरि लाज लोह लरि तुरुक विहंडिव
खरगसेनि हनि तासु वासु वैकुण्ठहिं मंडिव
परताप रुद्र परताप करि, अरि कुल विनु लष्यत कियहु
कहि केशव नरसह युद्र करि, इन्द्रासन उदित लियहु

विप्र उवाच

द्विज मांगे सो देव विप्रकौ वचन न खगिय
द्विज वोले सो करिय विप्र कौ मान न भंगिय
परमेश्वर अरु विप्र एकसम जानि सु लिज्जिय
विप्र वैर नहिं करिय विप्र कहँ सर्वसु दिज्जिय
सुनि रतनसेन मधुशाह सुव, विप्र बोलकिन लिज्जियहु
कहि केशव तन मन वचन करि, विप्र कहय सुई किज्जिहु

कुमार उवाच

पतिहिं गए मति जाय गए मति मान गरै जिय
मान गरे गुन गरै गरे गुन लाज जरै जिय
लाज जरे जस भजै जस धरम जाइ सब
धरम गये सब करम गये पाप बसै तब
पाप बसे नरकन परै, नरकन केशव को सहै
यह जान देहुँ सरबसु तुम्हें, सुपीठ दएँ पति ना रहै

दोहा

पति मति अति दृढ़ जानि कर, सुनि सब वचन समाज
राम-रूप दरसन दियौ, केशव त्रिभुवन राज

कुमार उवाच

विना लरे जो चलहुँ सुखद सुन्दर तब को कह
जो लरि चलौ सदेह लोग भागौ कहिं मों कह

तातै जुद्धहि जुरहुं जुद्ध जोधन अँग नाॅऊ
भुवि राखौ दै बाहु सीस ईसहि पहिराॅऊ
राखहुँ शरीर खिन्तहि खमरि, नहि केशव नेकहु हलौ
इहिं भाॅति लोक अवलोक करि तबहिं सुतुव सथ्थहि चलौ

श्री परमेश्वर उवाच

प्रथम धरेहु अवतार तै जु मेरे व्रत किन्नव
जीवन तनु धन मरदि तबहि मेरौ प्रण लिन्नव
प्रण प्राणन कौ बाद बहुत मेरे मन भायौ
अब केशव इहिकाल अबहि हौ भलौ रिझायौ
सुनि महाराज मधुशाह सुव, जदपि लोभ नहिं तौ हियव
तदपि सु मंगहि मंगने, हौ प्रसन्न तोकहुं भयव

कुमार उवाच

लै कर वर तब वीर सभा मडल सन बुल्लिय
तुम साथी समरथ्थ शत्रु कहँ रुत्त न डुल्लिय
लाज काज धरि त्राह लोह लरि लरि यश लिज्जहु
विकट कटक मै हटक पटक भट भुवि मँह दिज्जहु
यह अनूप मेरौ वचन, केशव चित धरि सुनहु सब
मरहु तौ मो सथ्थहि चलहु, भज्जहु तौ भजि जाव अब

साथ के लोगन कौ वचन

तुम बालक हम वृद्ध इते पर जुद्ध न देखे
तुम ठाकुर हम दास कहा कहिये इहि लेखे
कहि आवै सो कहौं कहा हम तुमरौ करिहैं
हम आगै तुम लरौ तु अब हम बूढ़ि न मरिहैं
कहि केशव मर्डहिं रारि रण, करि राखैं खित्तहि भवन
सुनि रतनसेन मधुशाह सुव, पुनि न होइ आवागवन

कुमार उवाच

जानि शूर सब सथ्थ प्रगट पञ्चम तनु फुल्लिय
साधु-साधु यह वचन पाय सुख मन सौं तुल्लिय
दै वरदान प्रसिद्ध सिद्ध कीनौ रण रुद्धहि
अधिक सुवेश सुदेश उद्दित उद्दित अरु वुद्धहि
लखि लोक ईश गुर ईश मिलि, रचि कविता कविता ठई
सुरईश ईश जगदीश मिल, एक एक उपमा दई

उपमा-वर्णन

किधौं सत्त की शिखा शोभ-साखा सुख दायक
जनु कुल दीपक जोति जुद्व-तम मेंटन लायक
किधौं प्रगट पति-पुंज पुन्य कर पल्लव पिक्खिय
किधौं कित्ति-परभात तेज मूरति करि लिक्खिय
कहि केशव राजत परम, रतनसेन शिर शुम्भियहु
जनु प्रलय काल फणपति कहूँ, फणपति फण उद्दिय कियहु

साजि साजि गजराज-राजि आगैं दल दीनहि
ता पीछे पति-पुंज पुज पयदर रथ कीनहि
ता पीछे असवार शूर केशव सब मोसन
चलत भई चकचौंध वाधि बखतर बर जोशन
तब कटक भये दल भट्ट सब, तुरत सेन दघटेत रन
जनु बिज्जु संग मिलए कइक, एकहि पवन फकीर धन

दोहा

राजा सनमुख तनु तजै, करै स्वर्ग मे भोग
दुनियाँ मे यश विस्तरै हँसे न जग कौ लोग
रतनसेन रण रहिव प्राण छत्तिय भ्रम राखहु
करहु सुवचन प्रमाण शूर सुरपुर पग नाखहु

डेढ़ सहस असवार सहस दो पयदर रहियव
पील पचास समेत इतिक सुरपुर नग लहियव
जहँ सहस चरि सैना प्रबल, तिन महँ कौउ न घर गयव
सोइ रतनसेन महाराज कौ, केशव यश छंदन कहिय

वीरसिंह देव चरित

अबुलफज़ल और वीरसिंह देव का युद्ध

कुण्डलिया

सुख पायो बैठे हते, एक सेमे सुलतान
खाँ सरीफ तिनि बोलि लिये, वीरसिंह देव सुजान
वीरसिंह देव सुजान मान मन बात कही तब
या प्रयाग मे कुवँर सौहँ कहिये मो सौ अब
तासौ करौ विचार करहिं अपने मन भाए
अनत न कबहूँ जाउ रहहू मो सौ सँग सुख पाए
पायनि पर तसलीम करि बोल्यो वीरसिंह राज
हौं गरीव तुम प्रकट ही सदा गरीब निवाज
सदा गरीब निवाज लाज तुमहीं लघु लामी
विनती करिये कहा महा प्रभु अन्तरजामी
लोभ मोह भय भाजि भजै हम मन वच कायनि
जौ राखहु मरजाद तजौं सपनेहु नहिं पायनि

चौपाई

सौं है कीन्ही।मॉफ प्रयाग। वीर !सिंह ' सुलतान सभाग
तुमहीं मेरे दोई नैन। तुम हौ बुधि बल भुज सुख दैन
तुमहीं।आगे पीछे चित्त। तुमहीं मंत्री तुम हौं मित्त
मात पिता तुम परयो पान। तुम लगि छाड़ौ अपने प्रान

जहँ रतनसेन रण कहँ चलिव, हाल्लिय महि कम्प्यौ गयन
तहँ है दयाल गोपाल तव, विप्र भेव बुल्लिय वचन

विप्र उवाच

जुतौ भूमि तौ वेलि वेलि लगि भूमि न हारै
जुतौ वेलि तौ फूल फूल लगि वेलि न जारै
जुतौ फूल तौ सुफल सुफल लगि फूल न तोरै
जो फल तौ परिपक्क पक्क लगि फलहिं न फोरै

जा फल पक्क तौ काम सब, परिपक्वहिं जग भंडिये
प्रान जुतौ पति बहुरहै, पति लगि प्रान न छंडिये

कुमार उवाच

गई भूमि पुनि फिरहि वेलि पुनि जमै जरे तैं
फल फूले तैं लगहिं फूल फूलत भरे तैं
केशव विद्या विकट निकट त्रिसरे तैं आवै
बहुरि होय धन धर्म गई सम्पति पुनि पावै

फिर होइ स्वभाग्सुशील मति, जगत गति यहू गाइये
प्राण गऐ फिरि फिरि मिलहि, पति न गऐ पति पाइये

विप्र उवाच

मातु हेत पितु तजिय के हेत सहोदर
सुतहि सहोदर हेत सखा सुत हेत तजहु वर
सखा हेत तजि बन्धु, बन्धु हित तजहुँ सुजन जन
सुजन हेत तजि सजन, सजन हित तजहु सुखन मन

कहि केशव सुख लगि घरनि तजि, घरनी हित घर छँड़िये
सुई छँड़िय सब घर हेत पति, प्राण हेत पति छँड़िये

कुमार उवाच

जासु बीज हरि-नाम जम्यो सुचि सुकृति भूमि थल
एकादशी अनेक विमल कोमल जाके दल

द्विज चरणोदक बुन्द कुन्द सीचत सुख वढ्ढिय
गोदानन के देत धर्म-तरुवर दिन चढ्ढिय
सत्त फूल फुल्लिय सरस, सुयश बास जग मंडिये
कहि केशव फलती वेर कर "प्रति" फल किमिकर छुडिये

विप्र उवाच

दानी कहा न देय चोर पुनि कहा न हरई
लोभी न कहा न लेय आग पुनि कहा न जरई
पापी कहा न करै कह न बेचै ब्योपारी
सुकवि न बरनै कहा कहा साधू न सँचारी
सुनि महाराज मधुशाह सुव, सूर कला नहिं मँडई
कहि केशव घर धन आदि दे, साधु कहा नहि छँडई

विप्र उवाच

पञ्च कहै सो कहिय पञ्च के कहत कहिज्जिय
पञ्च लहै सो लहिय पञ्च के लहत लहिज्जिय
पञ्च रहै तो रहिय पञ्च के दिष्षित दिष्षिय
परमेसुर अरु पञ्च सबन मिलि इक्कय लिष्षिय

वीरसिंह उवाच

इक साहि बअरु कीजतु प्रीति। सब दिन चलन कहत इह रीति
तुम्हैं छोड़ि मन आवै आन। तौ भूलौ सब धर्म विधान
यह सुनि साहि लह्यो सब पुरुख। लाग्यो कहन आपनौ दुःख
जितनो कुल आलम परवीन। थावर जङ्गम दोई दीन
तामे एकै वैरी लेख। अब्बुल फजल कहोने सेख
वह सालतु है मेरे चित्त। काढ़ि सकै तो काढ़हि मित्त
जितने कुल उमरावनि जानि। ते सब करत हमारी कानि
आगे पीछे मन आपने। बल न मोहिं तिनुका करि गने
हजरत को मन मोहित भयो। याके पीर अन्तर पर्यो

सत्वर साहि बुलायो राज। दक्खिन ते मेरे ही काज
हजरत सों जो मिलिहैं आनि। तो तुम जानहु मेरी हानि
वेगि जाउ तुम राजकुमार। बीचहि वासो कीजे रारि
पकरि लेहु कै डारो मारि। यह मन निहचै करहु विचारि
होहि काम यह तेरे हाथ। सब साहिबी तुम्हारे साथ
ऐसो हुकुम साहि जब कियौ। मानि सबै सिर ऊपर लियौ
राजनीति गुनि भय भ्रम तोरि। विनयो वीरसिंह कर जोरि
वह गुलाम तू साहिब ईश। तासों इतनी कीजहि रीस
प्रभु सेवक की भूल विचारि। प्रभुता इहै जु लेइ सम्हारि
सुनियतु है हजरत को चित्त। मंत्री लोग कहत है मित्त
तो लगि साहि करै जब रोष। कहिये यो किहि लागैं दोष
जन की जुवती कैसी रीति। सब तजि साहिब ही सों प्रीति
ताते वाहि न लागे दोष। छाँड़ि रोष कीजै सन्तोष

दोहा

सहसा कछु नहि कीजई, कीजे सबै विचारि
सहसा करें ते घटि परैं, अरु आवै जग गारि

साह सलीम उवाच

बरन्यो मति मते को सार। प्रभु जन को सब यहै विचार
जौ लगि यह जीवतु है सेख। तौ लगि मोहि मुआे ही लेख
सबै विचारि दूरि करि चित्त। बिदा होहु तुम अब ही मित्त
कसि तुरतहि बखतर तन वेगि। लै बाँधी कटि अपने तेगि
धोरौ दै सिर पाग पिन्हाई। कीनी विदा तुरत सुख पाई
दरखाने ते राजकुमार। चलत भई यह सोभा सार
रविमंडल ते आनन्दकन्द। निकसि चल्यो ज्यों पूरन चन्द
सैद मुजफर लीनो साथ। चलै न जानै कोऊ गाथ
वीच न एकौ कियो मोकाम। देख्यो आनि आपनो ग्राम

आनन्दे जन पद सुख पाइ। नीलकंठ जनु मेघहि पाइ
पठये चर नीके नरनाथ। आवत चले सेख के साथ
चारन कही कुँवर सो आइ। आए नरवर सेख मिलाइ
यह कहि भये सिन्ध के पार। पल पल लखै सेख की सार
आए सेख मीच के लिए। पुर पराइछे डेरा किये
अबुल फजल बड़े ही भोर। चले कूँच कै अपने जोर
आगे दीनी रसद चलाइ। पीछे आपुनु चले बजाइ
वीरसिंह दौरे अरि लेखि। ज्यों हरि मत्त गयदनि देखि
सुनतहि वीरसिंह को नाउँ। फिरि ठाढ़ौ भयो सेख सुभाउ
परम सरोष सो सेख बखानि। जस अपर नृसिंहहि जानि
दौरत सेख जानि बड़ भाग। एक पठान गही तब बाग

पठान उवाच

नहीं नवाब पसर को ठौरु। भूलिन सत्तुहि सामुहूँ दौरु
चलु चलु ज्यों क्यौंहूँ चलि जाहि। तेई पाइ सुख पावै साहि
पुनि अपने मन में करि नेम। जैवो चढ़ि तहँ साह सलेम

सेख उवाच

जूझत सुभट ठाँवहीं ठाँव। कहियो अब कैसे चलि जाँव
आनि लियो उन आलम तोग। भाजे लाज मरैगी लोग

पठान उवाच

सुभटन को तो वहऊ काम। आप पेर पहुँचावहिं राम
जो तू वहु तै आलम तोग। जौत बाचि है रचि है लोग

सेख उवाच

मैं बल लीनौं दक्खिन देस। जीत्यौ मैं दक्खिनी नरेस
साहि मुरादि स्वर्ग जब गये। मैं भुवभार आपु सिर लए
मेरो साहि भरोसो करै। भाजि जाउँ मैं कैसे धरै
कर यों आलम तोग गँवाई। कहिहौ कहा साहि सौं जाई

सत्वर साहि बुलायो राज। दक्खिन ते मेरे ही काज
हजरत सों जो मिलिहैं आनि। तो तुम जानहु मेरी हानि
वेगि जाउ तुम राजकुमार। बीचहि वासो कीजै रारि
पकरि लेहु कै डारो मारि। यह मन निहचै करहु विचारि
होहि काम यह तेरै हाथ। सब साहिबी तुम्हारे साथ
ऐसो हुकुम साहि जब कियौ। मानि सबै सिर ऊपर लियौ
राजनीति गुनि भय भ्रम तोरि। विनयो वीरसिंह कर जोरि
वह गुलाम तू साहिब ईश। तासौं इतनी कीजहि रीस
प्रभु सेवक की भूल विचारि। प्रभुता इहै जु लेइ सम्हारि
सुनियतु है हजरत को चित्त। मंत्री लोग कहत है मित्त
तो लगि साहि करै जब रोष। कहिये यो किहि लागैं दोष
जन की जुवती कैसी रीति। सब तजि साहिब ही सों प्रीति
ताते वाहि न लागे दोष। छाँड़ि रोष कीजै सन्तोष

दोहा

सहसा कछु नहिं कीजई, कीजै सबै विचारि
सहसा करे ते घटि परैं, अरु आवै जग गारि

साह सलीम उवाच

बरन्यो मति मते को सार। प्रभु जन को सब यहै विचार
जौ लगि यह जीवतु है सेख। तौ लगि मोहि मुओ ही लेख
सबै विचारि दूरि करि चित्त। बिदा होहु तुम अब ही मित्त
कसि तुरतहि बखतर तन वेगि। लै बाँधी कटि अपने तेगि
धोरौ दै सिर पाग पिन्हाई। कीनी विदा तुरत सुख पाई
दरखाने ते राजकुमार। चलत भई यह सोभा सार
रविमंडल ते आनन्दकन्द। निकसि चल्यो ज्यों पूरन चन्द
सैद मुजफर लीनो साथ। चलै न जानै कोऊ गाथ
बीच न एकौ कियो मोकाम। देख्यो आनि आपनो ग्राम

आनन्दे जन पद सुख पाइ। नीलकंठ जनु मेघहि पाइ
पठये चर नीके नरनाथ। आवत चले सेख के साथ
चारन कही कुँवर सो आइ। आए नरवर सेख मिलाइ
यह कहि भये सिन्ध के पार। पल पल लखै सेख की सार
आए सेख मीच के लिए। पुर पराइछे डेरा किये
अबुल फजल बड़े ही भोर। चले कूँच कै अपने जोर
आगे दीनी रसद चलाइ। पीछे आपुनु चले बजाइ
वीरसिंह दौरे अरि लेखि। ज्यों हरि मत्त गयदनि देखि
सुनतहि वीरसिंह को नाउँ। फिरि ठाढ़ौ भयो सेख सुभाउ
परम सरोष सो सेख बखानि। जस अपर नृसिंहहि जानि
दौरत सेख जानि बड़ भाग। एक पठान गही तब बाग

पठान उवाच

नहीं नवाब पसर को ठौरु। भूलिन सत्तुहि सासुहूँ दौरु
चलु चलु ज्यों क्यौंहू चलि जाहि। तेई पाइ सुख पावै साहि
पुनि अपने मन में करि नेम। जैवो चढ़ि तहँ साह सलेम

सेख उवाच

जूझत सुभट ठाँवहीं ठाँव। कहियो अब कैसे चलि जाँव
आनि लियो उन आलम तोग। भाजे लाज मरैगी लोग

पठान उवाच

सुभटन को तो वहऊ काम। आप पेर पहुँचावहिं राम
जो तू वहु तै आलम तोग। जौत वाचि है रचि है लोग

सेख उवाच

मैं बल लीनौं दक्खिन देस। जीत्यौ मैं दक्खिनी नरेस
साहि मुरादि स्वर्ग जब गये। मैं भुवभार आपु सिर लए
मेरो साहि भरोसो करै। भाजि जाउँ मैं कैसे धरै
कह यों आलम तोग गँवाई। कहिहौ कहा साहि सौं जाई

देखत लियो नगारो आइ । कहा वजाऊँ हौं घर जाइ
घर को मेरे पाइन परे । मेरे आगे हिन्दू लरैं

पठान उवाच

सेख विचारि चित्त मँह देखु । काजु अकाजु साहि कौ लेखु
सुनु नवाव तू जूझहि तहाँ । अकबर साहि विलोकै जहाँ

सेख उवाच

प्रभु पै जाइ जमातिहि जोर । सोक समुद्र सलीमहि वोर
तू जू कहत चलि जैये भाजि । उठे चहूँ दिसि वैरी गाजि
भाजे जातु मरनु जौ होइ । मोकौ कहा कहै सव कोइ
जौ भजिये लरिये गुन देखि । दुहूँ भाँति मरिवोई लेखि
भाजौ जौ तो भाजै जाइ । क्यों करि दैहै मोहि भजाइ
पति का वैरी पाइ निहारु । सिर पर साहि भया कौ यारु
लाज रही अंग अंग लपटाइ । कहु कैसे कै भाज्यो जाइ
छाँडि दई तिहि वाग विचारि । दौरयो सेख काढ़ि तरवारि
सेख होइ जितही जित जवै । भर भराइ भागै भट तवै
काढ़ै तेग सोह यो सेख । जनु तनु धेर धूम धुज देख
दण्ड धरे जनु आपुन काल । मृत्यु सहित जम मनहु कराल
मारे जाहि खंड द्वै होइ । ताके सम्मुख रहै न कोइ
गाजत गज हींसत हय ठारे । बिनु सूँडनि बिनु पायनि कारे
नारि कमान तीर असरार । चहुँ दिसि गोला चले अपार
परम भयानक यह रन भयौ । सेखहि उर गोला लगि गयो
जूझि सेख भूतल पर परे । नैकु न पग पाछे को धरे

सोरठा

अवधि धर्म को लेख, द्विज प्रतिपाल तै
रन मे जूझे सेख, अपनी पति लै साहि की

जब खुरखेट निपट मिटि गई। रन देखन की इच्छा भई
कहुँ नोग कहूँ डारे तास। कहूँ सिंदूरन पता का प्रकास
कहुँ डारे नेजा तरवारि। कहुँ तरकस कहुँ तीर निहारि
कहूँ रुण्ड कहूँ डारे मुण्ड। चहूँ ओर भुंडनि के भुण्ड
हिलत लुढ़त कहु सुभट अपार। छूटिनि टिकि टिक उठत तुषार
देषत कुँवर गये तब तहाँ। अब्दुल फजल सेख हैं जहाँ
परम सुगन्ध गन्ध तन परयौ। सोनित सहित धूरि धूसर भयो
कछु सुख कछु दुख व्यापत भये। लै सिर कुँवर बड़ौनहिं गये

लेखक की अन्य रचनायें

कविता-संग्रह

१ ताण्डव

उपन्यास

२ अम्बपाली

निबन्ध

३ प्रबन्ध-पूर्णिमा

इतिहास

४ हिन्दी-साहित्य : एक अध्ययन

आलोचना

५	कबीर :	एक अध्ययन
६	विद्यापति :	” ”
७	सूरदास :	” ”
८	तुलसीदास :	” ”
९	नन्ददास :	” ”
१०	केशवदास :	” ”
११	बिहारी :	” ”
१२	भारतेन्दु हरिश्चंद :	” ”
१३	जयशङ्करप्रसाद :	” ”
१४	‘निराला’ :	” ”
१५	प्रेमचन्द :	” ”

—प्रकाशक—

कि ता ब म ह ल

ज़ीरो रोड, इलाहाबाद

केवल कवर इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, इलाहाबाद मे छपा